* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

मूल्य १० रुपये

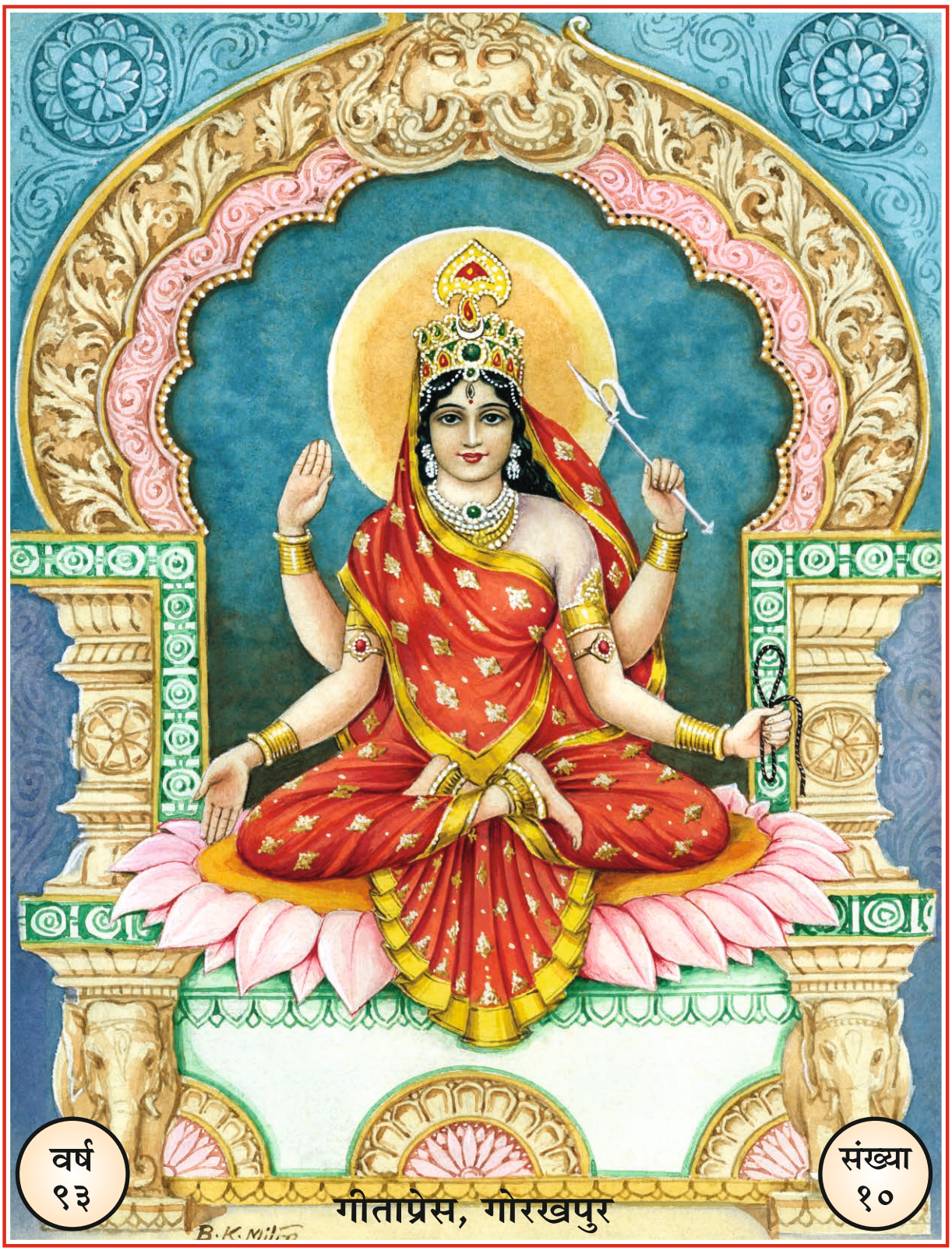

वर्ष ९३

संख्या १०

गीताप्रेस, गोरखपुर

भगवती भुवनेश्वरी

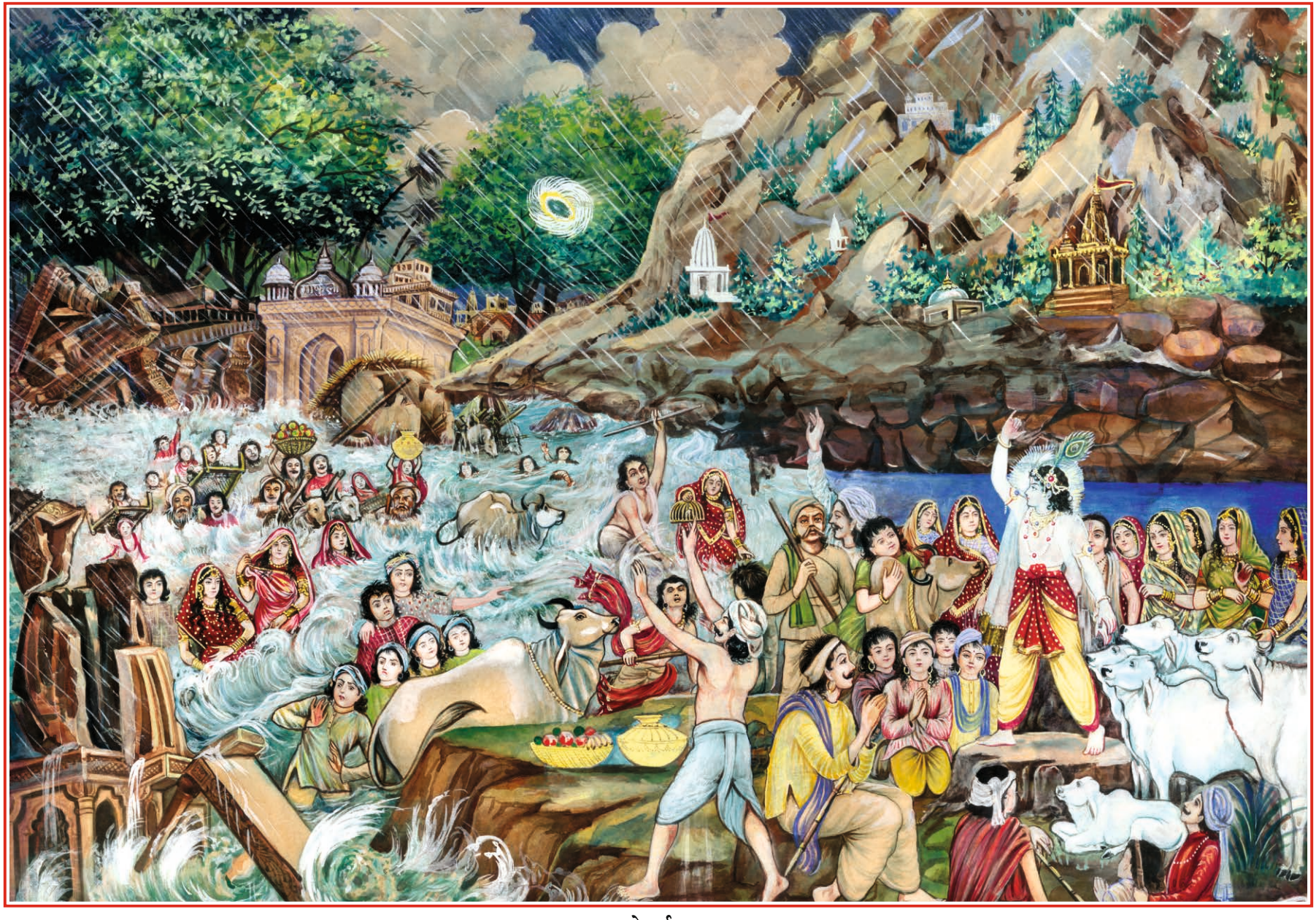

गोवर्धन-धारण

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

कल्याण

यज्जापः सकृदेव गोकुलपतेराकर्षकस्तत्क्षणाद्यत्र प्रेमवतां समस्तपुरुषार्थेषु स्फुरेत्तुच्छता।
यन्नामाङ्कितमन्त्रजापनपरः प्रीत्या स्वयं माधवः श्रीकृष्णोऽपि तदद्भुतं स्फुरतु मे राधेति वर्णद्वयम्॥

वर्ष ९३ | गोरखपुर, सौर कार्तिक, वि० सं० २०७६, श्रीकृष्ण-सं० ५२४५, अक्टूबर २०१९ ई० | संख्या १०

पूर्ण संख्या १११५

गोवर्धन-धारण

न हि सद्भावयुक्तानां सुराणामीशविस्मयः। मत्तोऽसतां मानभङ्गः प्रशमायोपकल्पते॥
तस्मान्मच्छरणं गोष्ठं मन्नाथं मत्परिग्रहम्। गोपाये स्वात्मयोगेन सोऽयं मे व्रत आहितः॥
इत्युक्त्वैकेन हस्तेन कृत्वा गोवर्धनाचलम्। दधार लीलया कृष्णश्छत्राकमिव बालकः॥
अथाह भगवान् गोपान् हेऽम्ब तात व्रजौकसः। यथोपजोषं विशत गिरिगर्तं सगोधनाः॥
न त्रास इह वः कार्यो मद्हस्ताद्रिनिपातने। वातवर्षभयेनालं तत्त्राणं विहितं हि वः॥

'देवतालोग तो सत्त्वप्रधान होते हैं। इनमें अपने ऐश्वर्यका अभिमान न होना चाहिये। अतः यह उचित ही है कि इन सत्त्वगुणसे च्युत दुष्ट देवताओंका मैं मान भंग कर दूँ। इससे अन्तमें उन्हें शान्ति ही मिलेगी। यह सारा व्रज मेरे आश्रित है, मेरेद्वारा स्वीकृत है और एकमात्र मैं ही इसका रक्षक हूँ। अतः मैं अपनी योगमायासे इसकी रक्षा करूँगा। सन्तोंकी रक्षा करना तो मेरा व्रत ही है।' ऐसा कहकर भगवान् श्रीकृष्णने खेल-खेलमें एक ही हाथसे गोवर्धनको उखाड़ लिया और जैसे छोटे-छोटे बालक बरसाती छत्तेके पुष्पको उखाड़कर हाथमें रख लेते हैं, वैसे ही उन्होंने उस पर्वतको धारण कर लिया। इसके बाद भगवान्ने गोपोंसे कहा—माताजी, पिताजी और व्रजवासियो! तुमलोग अपने गौओं और सब सामग्रियोंके साथ इस पर्वतके गड्ढेमें आकर आरामसे बैठ जाओ। देखो, तुमलोग ऐसी शंका न करना कि मेरे हाथसे यह पर्वत गिर पड़ेगा। तुमलोग तनिक भी मत डरो। इस आँधी-पानीके डरसे तुम्हें बचानेके लिये ही मैंने यह युक्ति रची है। **[श्रीमद्भागवतमहापुराण]**

(संस्करण २,००,०००)

कल्याण, सौर कार्तिक, वि० सं० २०७६, श्रीकृष्ण-सं० ५२४५, अक्टूबर २०१९ ई०

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या
१- गोवर्धन-धारण	३
२- कल्याण	५
३- भगवती भुवनेश्वरी [आवरणचित्र-परिचय]	६
४- प्रभुप्राप्तिके मार्गमें ब्रह्मचर्यपालनका महत्त्व (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	७
५- सदा दीवाली संतकी (स्वामीजी श्रीकृष्णानन्दजी महाराज)	१०
६- अति वाचालताका दुष्परिणाम	११
७- भगवान्‌की लीला (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	१२
८- प्रेमका प्रभाव	१३
९- नाम-साधना (समर्थ सद्‌गुरु श्रीब्रह्मचैतन्यजी महाराज गोंदवलेकर)	१४
१०- 'बोलै नहीं तो गुस्सा मरै'	१५
११- मैं भगवान्‌का हूँ—[साधकोंके प्रति—] (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	१६
१२- योगदृष्टिकोणमें प्राणायाम (डॉ० श्रीइन्द्रमोहनजी झा 'सच्चन', पी-एच०डी० (आयुर्वेद), डिप्लोमा इन योगा)	१७
१३- साधकोपयोगी उपदेशामृत (गोलोकवासी सन्त श्रीगयाप्रसादजी महाराज)	२१
१४- 'वृद्ध माता-पिताकी सेवासे बढ़कर कोई तीर्थ नहीं' (श्रीअर्जुनलालजी बंसल)	२२
१५- बुढ़ापा—जीवनका एक मीठा फल (श्रीमती कुशल गोगिया)	२३
१६- माता-पिता ही परम देवता हैं (आचार्य डॉ० श्रीरामेश्वरप्रसादजी गुप्त, एम०ए०, पी-एच०डी०)	२४
१७- संत-स्मरण (परम पूज्य देवाचार्य श्रीराजेन्द्रदासजी महाराजके गीताभवन, ऋषिकेशमें हुए प्रवचनसे साभार)	२६
१८- सुख-दुःखकी तहमें (ब्रह्मचारी श्रीत्र्यम्बकेश्वरचैतन्यजी महाराज, अखिल भारतवर्षीय धर्मसंघ)	२७
१९- बालकोंके लिये सात कर्तव्य [कविता] (श्रीलक्ष्मीनारायणजी मूँधड़ा)	२९
२०- संत-वचनामृत (वृन्दावनके गोलोकवासी सन्त पूज्य श्रीगणेशदासजी भक्तमालीके उपदेशपरक पत्रोंसे)	३०
२१- श्रीसमर्थ-शिष्या वेणाबाई (वेणास्वामी) (सौ० मधुवन्ती मकरन्द मराठे)	३१
२२- अतिथिकी योग्यता नहीं देखनी चाहिये	३५
२३- गौमाताकी बुद्धिमानी	३६
२४- अपनी ओर निहारो [प्रेरणा-पथ—] (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)	३७
२५- साधनोपयोगी पत्र	३८
२६- व्रतोत्सव-पर्व [कार्तिक मासके व्रत-पर्व]	४०
२७- श्रीभगवन्नाम-जपकी शुभ सूचना	४१
२८- नाम-जपकी महिमा	४३
२९- श्रीभगवन्नामजपके लिये विनीत प्रार्थना	४४
३०- कृपानुभूति	४६
३१- पढ़ो, समझो और करो	४७
३२- मनन करने योग्य	५०

चित्र-सूची

१- भगवती भुवनेश्वरी	(रंगीन)	आवरण-पृष्ठ
२- गोवर्धन-धारण	(")	मुख-पृष्ठ
३- भगवती भुवनेश्वरी	(इकरंगा)	६
४- वनमें राणाप्रताप और उनका परिवार	(")	२७
५- अम्बादासका डाल काटना	(")	३४
६- समुद्र और सरिताएँ	(")	५०

एकवर्षीय शुल्क ₹ २५०

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय । सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय । जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते । गौरीपति जय रमापते॥

पंचवर्षीय शुल्क ₹ १२५०

विदेशमें Air Mail शुल्क — वार्षिक US$ 50 (₹ 3,000), पंचवर्षीय US$ 250 (₹ 15,000) — Us Cheque Collection Charges 6$ Extra

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका, सहसम्पादक—डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़
केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : gitapress.org | e-mail : kalyan@gitapress.org | ✆ 09235400242 / 244

सदस्यता-शुल्क—व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।
Online सदस्यता हेतु gitapress.org पर Kalyan या Kalyan Subscription option पर click करें।
अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क gitapress.org अथवा book.gitapress.org पर नि:शुल्क पढ़ें।

कल्याण

याद रखो—जो सद्‌गुण भगवान्‌में प्रीति बढ़ानेवाले नहीं हैं, उनमें कहीं-न-कहीं कोई दोष है। उनको खोजो और दूर करो। सद्‌गुणकी यही पहचान है कि वह भगवान्‌की ओर ले जाता है।

याद रखो—जिसको अपने सद्‌गुणोंका अभिमान है और जो अपनेको उनका निर्माण करनेवाला मानता है, उसके सद्‌गुणोंकी संख्या-वृद्धि तथा विशुद्धि रुक जाती है। सद्‌गुणोंका अभिमान दूसरोंमें दोषोंका दर्शन कराता है एवं उनके प्रति हेयदृष्टि, घृणा उत्पन्न करता है, जिसका परिणाम व्यवहारमें क्रमशः प्रेमशून्यता, कटुता, द्वेष, द्रोह और अन्तमें हिंसा-प्रतिहिंसातक हो सकता है।

याद रखो—जहाँ दोष-दर्शनकी बान पड़ी कि फिर किसीके छोटे दोष भी बहुत बड़े दीखते हैं, बिना हुए ही दोष दीखने लग जाते हैं और अन्तमें कोई भी पुरुष ऐसा नहीं बच पाता कि जिसमें दोष-दर्शन करनेवालेकी दोषपूर्ण बुद्धि किसी दोषको न देखे। यहाँतक कि फिर, उसकी दृष्टिमें मंगलमय भगवान्‌में भी दोष दीखने लगते हैं।

याद रखो—जितना ही दोष-दर्शन बढ़ता है, उतना ही दोषोंका चिन्तन-मनन भी बढ़ता है। फलतः दोषोंमेंसे घृणा निकल जाती है और उनमें प्रीति उत्पन्न होने लगती है।

याद रखो—अच्छे उद्देश्यसे भी बुरी वस्तुका बार-बारका चिन्तन-मनन उस वस्तुके विविध चित्र हृदयपर अंकित कर देता है और फिर बार-बार उसीकी स्फुरणा और स्मृति होती है तथा सद्‌गुण क्षीण होने लगते हैं।

याद रखो—जब इस प्रकार बाहर-भीतर दोष-ही-दोष आकर बस जाते हैं और उन्हींमें मन घुल-मिल जाता है, तब सारे सद्‌गुण क्षीण होते-होते लुप्त हो जाते हैं। परिणाम यह होता है कि दोषोंमें ही गुणबुद्धि होने लगती है, पापमें ही पुण्यबुद्धि होने लगती है।

याद रखो—जहाँ बुद्धिने गुणको दोष और दोषको गुण मान लिया कि फिर चित्तका भण्डार दोषोंसे भर जाता है, उनमें आसक्ति हो जाती है और बार-बार प्रयत्न होता है, नये-नये दोषोंका संग्रह करनेके लिये।

याद रखो—सद्‌गुण वे ही टिकते हैं, जो प्रभुको समर्पित होते रहते हैं और जिनकी प्राप्तिमें प्रभुकृपाको ही कारण माना जाता है। इस स्थितिमें प्रभुकृपा अभिमान नहीं उत्पन्न होने देती और सद्‌गुणोंकी बड़ी सावधानीसे रक्षा करती है। फिर ये सद्‌गुण भगवान्‌की पूजाके पुष्प बन जाते हैं और इनकी सुगन्ध तथा प्रसादसे आस-पासका सारा वातावरण सुख-शान्तिकी मधुर-मनोहर सुगन्धसे भर जाता है।

याद रखो—सद्‌गुण वे ही हैं—जो किसी भी लौकिक कामना-वासनासे या अहंता-ममतासे कलंकित न होकर प्रभुके चरणोंमें समर्पित होनेयोग्य होते हैं। जिन सद्‌गुणोंपर अभिमानकी, ममताकी, मोहकी, कामना-वासनाकी कालिमा लग जाती है, वे भगवच्चरणोंपर चढ़नेयोग्य नहीं रहते। उनसे तो कलंक ही बढ़ता है।

याद रखो—वही सद्‌गुण है, वही सद्भाग्य है, जो मानव-जीवनको भगवच्चिन्तनमें लगा दे। सद्‌गुणोंके अभिमानसे भरी लम्बी आयुकी अपेक्षा घड़ी-दो-घड़ीका वह समय महान् श्रेष्ठ है, जिसमें मनुष्य अपनेको '**तृणादपि सुनीच**' और सर्वथा पुरुषार्थहीन एवं गुणहीन मानकर भगवान्‌के पावन चरणोंका आश्रय ले पाता है। '**शिव**'

आवरणचित्र-परिचय—

भगवती भुवनेश्वरी

दुर्गासप्तशतीके ग्यारहवें अध्यायके मंगलाचरणमें भगवती भुवनेश्वरीका ध्यान इस प्रकार वर्णित है 'मैं भुवनेश्वरी देवीका ध्यान करता हूँ। उनके श्रीअंगोंकी शोभा प्रातःकालके सूर्यदेवके समान अरुणाभ है। उनके मस्तकपर चन्द्रमाका मुकुट है। तीन नेत्रोंसे युक्त देवीके मुखपर मुस्कानकी छटा छायी रहती है। उनके हाथोंमें पाश, अंकुश, वरद एवं अभय मुद्रा शोभा पाते हैं।'

देवीभागवतमें वर्णित मणिद्वीपकी अधिष्ठात्री देवी ह्लेखा (ह्रीं) मन्त्रकी स्वरूपाशक्ति और सृष्टिक्रममें महालक्ष्मीस्वरूपा—आदिशक्ति भगवती भुवनेश्वरी भगवान् शिवके समस्त लीला-विलासकी सहचरी हैं। जगदम्बा भुवनेश्वरीका स्वरूप सौम्य और अंगकान्ति अरुण है। भक्तोंको अभय और समस्त सिद्धियाँ प्रदान करना इनका स्वाभाविक गुण है। दशमहाविद्याओंमें ये पाँचवें स्थानपर परिगणित हैं। देवीपुराणके अनुसार मूल प्रकृतिका दूसरा नाम ही भुवनेश्वरी है। ईश्वररात्रिमें जब ईश्वरके जगद्रूप व्यवहारका लोप हो जाता है, उस समय केवल ब्रह्म अपनी अव्यक्त प्रकृतिके साथ शेष रहता है, तब ईश्वररात्रिकी अधिष्ठात्री देवी भुवनेश्वरी कहलाती हैं। अंकुश और पाश इनके मुख्य आयुध हैं। अंकुश नियन्त्रणका प्रतीक है और पाश राग अथवा आसक्तिका प्रतीक है। इस प्रकार सर्वरूपा मूल प्रकृति ही भुवनेश्वरी हैं, जो विश्वको वमन करनेके कारण वमा, शिवमयी होनेसे ज्येष्ठा तथा कर्म-नियन्त्रण, फलदान और जीवोंको दण्डित करनेके कारण रौद्री कही जाती हैं। भगवान् शिवका वाम भाग ही भुवनेश्वरी कहलाता है। भुवनेश्वरीके संगसे ही भुवनेश्वर सदाशिवको सर्वेश होनेकी योग्यता प्राप्त होती है।

महानिर्वाणतन्त्रके अनुसार सम्पूर्ण महाविद्याएँ भगवती भुवनेश्वरीकी सेवामें सदा संलग्न रहती हैं। सात करोड़ महामन्त्र इनकी सदा आराधना करते हैं। दशमहाविद्याएँ ही दस सोपान हैं। काली तत्त्वसे निर्गत होकर कमला तत्त्वतककी दस स्थितियाँ हैं, जिनसे अव्यक्त भुवनेश्वरी व्यक्त होकर ब्रह्माण्डका रूप धारण कर सकती हैं तथा प्रलयमें कमलासे अर्थात् व्यक्त जगत्से क्रमशः लय होकर कालीरूपमें मूल प्रकृति बन जाती हैं। इसलिये इन्हें कालकी जन्मदात्री भी कहा जाता है।

इस प्रकार बृहन्नीलतन्त्रकी यह धारणा पुराणोंके विवरणोंसे भी पुष्ट होती है कि प्रकारान्तरसे काली और भुवनेशी दोनोंमें अभेद है। अव्यक्त प्रकृति भुवनेश्वरी ही रक्तवर्णा काली हैं। देवीभागवतके अनुसार दुर्गम नामक दैत्यके अत्याचारसे सन्तप्त होकर देवताओं और ब्राह्मणोंने हिमालयपर सर्वकारणस्वरूपा भगवती भुवनेश्वरीकी ही आराधना की थी। उनकी आराधनासे प्रसन्न होकर भगवती भुवनेश्वरी तत्काल प्रकट हो गयीं। वे अपने हाथोंमें बाण, कमल-पुष्प तथा शाक-मूल लिये हुए थीं। उन्होंने अपने नेत्रोंसे अश्रुजलकी सहस्रों धाराएँ प्रकट कीं। इस जलसे भूमण्डलके सभी प्राणी तृप्त हो गये। समुद्रों तथा सरिताओंमें अगाध जल भर गया और समस्त औषधियाँ सिंच गयीं। अपने हाथमें लिये गये शाकों और फल-मूलसे प्राणियोंका पोषण करनेके कारण भगवती भुवनेश्वरी ही 'शताक्षी' तथा 'शाकम्भरी' नामसे विख्यात हुईं। इन्होंने ही दुर्गमासुरको युद्धमें मारकर उसके द्वारा अपहृत वेदोंको देवताओंको पुनः सौंपा था। उसके बाद भगवती भुवनेश्वरीका एक नाम दुर्गा प्रसिद्ध हुआ।

भगवती भुवनेश्वरीकी उपासना पुत्र-प्राप्तिहेतु विशेष फलप्रदा है। रुद्रयामलमें इनका कवच, नीलसरस्वती-तन्त्रमें हृदय तथा महातन्त्रार्णवमें सहस्रनाम संकलित है। भुवनेश्वरी शक्तिपीठ गुजरातके गोंडलमें स्थित है।

प्रभुप्राप्तिके मार्गमें ब्रह्मचर्यपालनका महत्त्व

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

परमात्मप्राप्तिके उद्देश्यसे किये गये ब्रह्मचर्यके पालनमात्रसे मनुष्यका कल्याण हो सकता है, यह बात भगवान् श्रीकृष्णने गीताके आठवें अध्यायके ११वें श्लोकमें कही है। भगवान् कहते हैं—

यदक्षरं वेदविदो वदन्ति
विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति
तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये॥

'वेदके जाननेवाले विद्वान् जिस सच्चिदानन्दघनरूप परमपदको अविनाशी कहते हैं, आसक्तिरहित यत्नशील संन्यासी महात्माजन जिसमें प्रवेश करते हैं, और जिस परमपदको चाहनेवाले ब्रह्मचारी लोग ब्रह्मचर्यका आचरण करते हैं, उस परमपदको मैं तेरे लिये संक्षेपमें कहूँगा।'

कठोपनिषद्में भी इस श्लोकसे मिलता-जुलता मन्त्र आया है—

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति
तपाꣳसि सर्वाणि च यद्वदन्ति।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति
तत्ते पदꣳसंग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्॥

(१।२।१५)

'सारे वेद जिस पदका वर्णन करते हैं, समस्त तपोंको जिसकी प्राप्तिका साधन बतलाते हैं तथा जिसकी इच्छा रखनेवाले ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्यका पालन करते हैं, उस पदको मैं तुम्हें संक्षेपमें बताता हूँ—'ओम्', यही वह पद है।'

उक्त दोनों ही मन्त्रोंमें परमपदकी इच्छासे ब्रह्मचर्यके पालनकी बात आयी है, इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि परमात्माकी प्राप्तिके उद्देश्यसे किये गये ब्रह्मचर्यके पालनमात्रसे मनुष्यका कल्याण हो सकता है। क्षत्रिय-कुलचूडामणि वीरवर भीष्मकी जो इतनी महिमा है, वह उनके अखण्ड ब्रह्मचर्य-व्रतको लेकर ही है। इसीके कारण उनका 'भीष्म' नाम पड़ा और इसीके प्रतापसे उन्हें अपने पिता शन्तनुसे इच्छामृत्युका वरदान मिला, जिसके कारण वे संसारमें अजेय हो गये। यही कारण था कि वे सहस्रबाहु-जैसे अप्रतिम योद्धाकी भुजाओंका छेदन करनेवाले तथा इक्कीस बार पृथ्वीको निःक्षत्रिय कर देनेवाले, साक्षात् ईश्वरके आवेशावतार भगवान् परशुरामसे भी नहीं हारे। इतना ही नहीं, परात्पर भगवान् श्रीकृष्णको भी इनके कारण महाभारत युद्धमें शस्त्र न लेनेकी अपनी प्रतिज्ञा तोड़नी पड़ी। उनकी यह सब महिमा ब्रह्मचर्यके ही कारण थी। वे भगवान्‌के अनन्य भक्त, आदर्श पितृभक्त तथा महान् ज्ञानी एवं शास्त्रोंके ज्ञाता भी थे; परंतु उनकी महिमाका प्रधान कारण उनका आदर्श ब्रह्मचर्य ही था। इसीके कारण वे अपने अस्त्रविद्याके गुरु भगवान् परशुरामके कोपभाजन हुए, परंतु विवाह न करनेका अपना हठ नहीं छोड़ा। धन्य ब्रह्मचर्य! भक्तश्रेष्ठ हनुमान्, देवर्षि नारद, सनकादि मुनीश्वर, महामुनि शुकदेव तथा बालखिल्यादि ऋषि भी अपने ब्रह्मचर्यके लिये प्रसिद्ध हैं।

ब्रह्मचर्यकी रक्षासे लाभ और उसके नाशसे हानियाँ

ब्रह्मचर्यकी रक्षासे शरीरमें बल, तेज, उत्साह एवं ओजकी वृद्धि होती है, शीत, उष्ण, पीड़ा आदि सहन करनेकी शक्ति आती है, अधिक परिश्रम करनेपर भी थकावट कम आती है, प्राणवायुको रोकनेकी शक्ति आती है, शरीरमें फुर्ती एवं चेतनता रहती है, आलस्य तथा तन्द्रा कम आती है, बीमारियोंके आक्रमणको रोकनेकी शक्ति आती है, मन प्रसन्न रहता है, कार्य करनेकी क्षमता प्रचुरमात्रामें रहती है, दूसरेके मनपर प्रभाव डालनेकी शक्ति आती है, सन्तान दीर्घायु, बलिष्ठ एवं स्वस्थ होती है, इन्द्रियाँ सबल रहती हैं, शरीरके अंग-प्रत्यंग सुदृढ़ रहते हैं, आयु बढ़ती है, वृद्धावस्था जल्दी नहीं आती, शरीर स्वस्थ एवं हलका रहता है, काम-वासना कम होती है, स्मरणशक्ति बढ़ती है, बुद्धि तीव्र होती है, मन बलवान् होता है, कायरता नहीं आती, कर्तव्यकर्म करनेमें अनुत्साह नहीं होता, बड़ी-से-बड़ी

विपत्ति आनेपर भी धैर्य नहीं छूटता, कठिनाइयों एवं विघ्न-बाधाओंका वीरतापूर्वक सामना करनेकी शक्ति आती है, धर्मपर दृढ़ आस्था होती है, अन्त:करण शुद्ध रहता है, आत्मसम्मानका भाव बढ़ता है, दुर्बलोंको सतानेकी प्रवृत्ति कम होती है, क्रोध, इर्ष्या, द्वेष आदिके भाव कम होते हैं, क्षमाका भाव बढ़ता है, दूसरोंके प्रति सहिष्णुता तथा सहानुभूति बढ़ती है, दूसरोंका कष्ट दूर करने तथा दीन-दुखियोंकी सेवा करनेका भाव बढ़ता है, सत्त्वगुणकी वृद्धि होती है, वीर्यमें अमोघता आती है, परस्त्रीके प्रति मातृभाव जाग्रत् होता है, नास्तिकता तथा निराशाके भाव कम होते हैं, असफलतामें भी विषाद नहीं होता, सबके प्रति प्रेम एवं सद्भाव रहता है तथा सबसे बढ़कर भगवत्प्राप्तिकी योग्यता आती है, जो मनुष्य-जीवनका चरमफल है, जिसके लिये यह मनुष्यदेह हमें मिला है।

इसके विपरीत ब्रह्मचर्यके नाशसे मनुष्य नाना प्रकारकी बीमारियोंका शिकार हो जाता है, शरीर खोखला हो जाता है, थोड़ा-सा भी परिश्रम अथवा कष्ट सहन नहीं होता, शीत, उष्ण आदिका प्रभाव शरीरपर बहुत जल्दी होता है, स्मरणशक्ति कमजोर हो जाती है, सन्तान उत्पन्न करनेकी शक्ति नष्ट हो जाती है, सन्तान होती भी है तो दुर्बल एवं अल्पायु होती है, मन अत्यन्त दुर्बल हो जाता है, संकल्पशक्ति कमजोर हो जाती है, स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है, जरा भी प्रतिकूलता सहन नहीं होती, आत्मविश्वास कम हो जाता है, काम करनेमें उत्साह नहीं रहता, शरीरमें आलस्य छाया रहता है, चित्त सदा सशंकित रहता है, मनमें विषाद छाया रहता है, कोई भी नया काम हाथमें लेनेमें भय मालूम होता है, थोड़े-से भी मानसिक परिश्रमसे दिमागमें थकान आ जाती है, बुद्धि मन्द हो जाती है, अधिक सोचनेकी शक्ति नहीं रहती, असमयमें ही वृद्धावस्था आ घेरती है और थोड़ी ही अवस्थामें मनुष्य कालके गालमें चला जाता है, चित्त स्थिर नहीं हो पाता, मन और इन्द्रियाँ वशमें नहीं हो पातीं और मनुष्य भगवत्प्राप्तिके मार्गसे कोसों दूर हट जाता है। वह न इस लोकमें सुखी रहता है और न परलोकमें ही सुखी होता है। ऐसी अवस्थामें मनुष्यको चाहिये कि बड़ी सावधानीसे वीर्यकी रक्षा करे। वीर्यरक्षा ही जीवन और वीर्यनाश ही मृत्यु है, इस बातको सदा स्मरण रखे। गृहस्थाश्रममें भी केवल सन्तानोत्पादनके उद्देश्यसे ऋतुकालमें अधिक-से-अधिक महीनेमें दो बार स्त्रीसंग करे।

ब्रह्मचर्यरक्षाके उपाय

उपर्युक्त प्रकारके मैथुनके त्यागके अतिरिक्त निम्नलिखित साधन भी ब्रह्मचर्यकी रक्षामें सहायक हो सकते हैं—

(१) भोजनमें उत्तेजक पदार्थोंका सर्वथा त्याग कर देना चाहिये। मिर्च, राई, गरम मसाले, अचार, खटाई, अधिक मीठा और अधिक गरम चीजें नहीं खानी चाहिये। भोजन खूब चबाकर करना चाहिये। भोजन सदा सादा, ताजा और नियमित समयपर करना चाहिये। मांस, मद्य, भाँग आदि अन्य नशीली वस्तुएँ तथा केशर, कस्तूरी एवं मकरध्वज आदि वाजीकरण औषधोंका भी सेवन नहीं करना चाहिये।

(२) यथासाध्य नित्य खुली हवामें सबेरे और सायंकाल पैदल घूमना चाहिये।

(३) रातको जल्दी सोकर सबेरे ब्राह्म मुहूर्तमें अर्थात् पहरभर रात रहे अथवा सूर्योदयसे कम-से-कम घंटेभर पूर्व अवश्य उठ जाना चाहिये। सोते समय पेशाब करके, हाथ-पैर धोकर तथा कुल्ला करके भगवान्‌का स्मरण करते हुए सोना चाहिये।

(४) कुसंगका सर्वथा त्यागकर यथासाध्य सदाचारी, वैराग्यवान्, भगवद्भक्त पुरुषोंका संग करना चाहिये, जिससे मलिन वासनाएँ नष्ट होकर हृदयमें अच्छे भावोंका संग्रह हो।

(५) पति-पत्नीको छोड़कर अन्य स्त्री-पुरुष अकेलेमें कभी न बैठें और न एकान्तमें बातचीत ही करें।

(६) रामायण, महाभारत, उपनिषद्, श्रीमद्भागवत

तथा भगवद्गीता आदि उत्तम ग्रन्थोंका नित्य नियमपूर्वक स्वाध्याय करना चाहिये। इससे बुद्धि शुद्ध होती है और मनमें गन्दे विचार नहीं आते।

(७) आलस्य और प्रमादमें समय नहीं बिताना चाहिये। मनको सदा किसी-न-किसी अच्छे काममें लगाये रखना चाहिये।

(८) मूत्रत्याग और मलत्यागके बाद इन्द्रियको ठंढे जलसे धोना चाहिये और मल-मूत्रके वेगको कभी नहीं रोकना चाहिये।

(९) यथासाध्य ठंढे जलसे नित्य स्नान करना चाहिये।

(१०) नित्य नियमितरूपसे किसी प्रकारका व्यायाम करना चाहिये। हो सके तो नित्यप्रति कुछ आसन एवं प्राणायामका भी अभ्यास करना चाहिये।

(११) लँगोटा या कौपीन अवश्य रखना चाहिये।

(१२) नित्य नियमितरूपसे कुछ समयतक परमात्माका ध्यान अवश्य करना चाहिये।

(१३) यथाशक्ति भगवान्‌के किसी भी नामका श्रद्धा एवं प्रेमपूर्वक जप तथा कीर्तन करना चाहिये। कामवासना जाग्रत् हो तो नाम-जपकी धुन लगा देनी चाहिये, अथवा जोर-जोरसे कीर्तन करने लगना चाहिये। कामवासना नाम-जप और कीर्तनके सामने कभी ठहर नहीं सकती।

(१४) जगत्‌में वैराग्यकी भावना करनी चाहिये। संसारकी अनित्यताका बार-बार स्मरण करना चाहिये। मृत्युको सदा याद रखना चाहिये।

(१५) पुरुषोंको स्त्रीके शरीरमें और स्त्रियोंको पुरुषके शरीरमें मलिनत्व-बुद्धि करनी चाहिये। ऐसा समझना चाहिये कि जिस आकृतिको हम सुन्दर समझते हैं, वह वास्तवमें चमड़ेमें लपेटा हुआ मांस, अस्थि, रुधिर, मज्जा, मल, मूत्र, कफ आदि मलिन एवं अपवित्र पदार्थोंका एक घृणित पिण्डमात्र है।

(१६) महीनेमें कम-से-कम दो दिन अर्थात् प्रत्येक एकादशीको (सम्भव हो तो निर्जल) उपवास करना चाहिये और अमावास्या तथा पूर्णिमाको केवल एक ही समय अर्थात् दिनमें भोजन करना चाहिये।

(१७) भगवान्‌की लीलाओं तथा महापुरुषों एवं वीर ब्रह्मचारियोंके चरित्रोंका मनन करना चाहिये।

(१८) यथासाध्य सबमें परमात्मभावना करनी चाहिये।

(१९) नित्य-निरन्तर भगवान्‌को स्मरण रखनेकी चेष्टा करनी चाहिये।

ऊपर जितने साधन बताये गये हैं, उनमें अन्तिम साधन सबसे अधिक कारगर है। यदि नित्य-निरन्तर अन्तःकरणको भगवद्भावसे भरते रहनेकी चेष्टा की जाय तो मनमें गन्दे भाव कभी उत्पन्न हो ही नहीं सकते। किसी कविने क्या ही सुन्दर कहा है—

जहाँ राम तहँ काम नहिं, जहाँ काम नहिं राम।
सपनेहुँ कबहुँक रहि सकैं रबि रजनी एक ठाम॥

जिस प्रकार सूर्यके उदय होनेपर रात्रिके घोर अन्धकारका नाश हो जाता है, उसी तरह जिस हृदयमें भगवान् अपना डेरा जमा लेते हैं, अर्थात् नित्य-निरन्तर भगवान्‌का स्मरण होता है, वहाँ कामका उदय भी नहीं हो सकता। भगवद्भक्तिके प्रभावसे हृदयमें विवेक एवं वैराग्य अपने-आप उदय हो जाता है। पद्मपुराणान्तर्गत श्रीमद्भागवतके माहात्म्यमें ज्ञान और वैराग्यको भक्तिके पुत्ररूपमें वर्णन किया गया है; अतः ब्रह्मचर्यकी रक्षा करनेके लिये नित्य-निरन्तर भगवान्‌का स्मरण करते रहना चाहिये। भगवत्स्मरणके प्रभावसे अन्तःकरण सर्वथा शुद्ध होकर बहुत शीघ्र भगवान्‌की प्राप्ति हो जाती है, जो मनुष्य-जीवनका चरम लक्ष्य और ब्रह्मचर्यका अन्तिम फल है। भगवान्‌ने स्वयं गीताजीमें कहा है—

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥

(८।१४)

सदा दीवाली संतकी

(स्वामीजी श्रीकृष्णानन्दजी महाराज)

तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता॥

(गीता १०। ११)

'हे अर्जुन! उनके ऊपर अनुग्रह करनेके लिये ही मैं स्वयं उनके अन्तःकरणमें एकीभावसे स्थित हुआ, अज्ञानसे उत्पन्न हुए अन्धकारको प्रकाशमय तत्त्वज्ञानरूप दीपकके द्वारा नष्ट करता हूँ।'

उपर्युक्त वचन श्रीभगवान्‌के श्रीमुखसे अर्जुनके प्रति कहा गया है। भक्तोंका हृदय ही तो भगवान्‌का वृन्दावन है। मनुष्य अपने-अपने घरोंमें दीवाली मनाता है, भगवान् अपने भक्तोंके हृदय-मन्दिरमें मनाते हैं।

भगवान्‌का यह अंशरूप जीव मोहरूपी अमावस्याकी रात्रिमें सोया हुआ है। ***'मोह निसाँ सबु सोवनिहारा।'*** इसमें ममता ही घोर अन्धकार है, जो राग-द्वेषरूपी उल्लूके लिये सुखदायक है।

ममता तरुन तमी अँधिआरी। राग द्वेष उलूक सुखकारी॥

इसी मोहनिशामें सोया हुआ मनुष्य नाना प्रकारके स्वप्न देखता हुआ, सुख-दुःखको भोगता हुआ चौरासी लाख योनियोंमें भ्रमण कर रहा है। जबतक मोहनिशा दूर नहीं होती, तबतक जीवका कल्याण नहीं है। कल्याणकामी पुरुषोंको झटपट इस मोहनिद्रासे जाग जाना चाहिये।

जिस प्रकार रात्रिके अन्धकारको न तो षोडशकलापूर्ण चन्द्रमा ही दूर कर सकता है और न असंख्य तारे ही। आगमें भी उतनी सामर्थ्य नहीं कि सम्पूर्ण अन्धकारको दूर कर दे। तभी तो श्रीमद्‌गोस्वामी तुलसीदासजी लिखते हैं—

राकापति षोडस उअहिं तारागन समुदाइ।
सकल गिरिन्ह दव लाइअ बिनु रबि राति न जाइ॥

वैसे ही मनुष्यके हृदयमें जो अज्ञानरूपी अन्धकार है, उसको दूर करनेके लिये नाना प्रकारके कर्मकाण्ड तथा पुस्तकीय ज्ञान भी समर्थ नहीं हैं। मोहनिशासे जागनेके लिये तथा ममतारूपी अन्धकारको दूर करनेके लिये तीन उपाय बताये गये हैं—(१) ज्ञान, (२) वैराग्य और (३) भक्ति। (वास्तवमें ये तीनों भी आपसमें मिले ही हुए हैं। एकके बिना दूसरा नहीं रह सकता।) श्रीरामचरितमानसमें तीनोंका उदाहरण देखिये—

(१) ज्ञान—

होइ बिबेकु मोह भ्रम भागा। तब रघुनाथ चरन अनुरागा॥
सपनें होइ भिखारि नृपु रंकु नाकपति होइ।
जागें लाभु न हानि कछु तिमि प्रपंच जियँ जोइ॥

(२) वैराग्य—

जानिअ तबहिं जीव जग जागा। जब सब बिषय बिलास बिरागा॥

(३) भक्ति—

भगत भूमि भूसुर सुरभि सुर हित लागि कृपाल।
करत चरित धरि मनुज तनु सुनत मिटहिं जग जाल॥
सखा समुझि अस परिहरि मोहू। सिय रघुबीर चरन रत होहू॥

भक्ति, ज्ञान और वैराग्य भगवान्‌की कृपासे ही प्राप्य हैं, अन्यथा नहीं। मनुष्यका कर्तव्य तो यहींतक सीमित है कि वह येनकेनप्रकारेण अपने अन्तःकरणरूपी आलयको पवित्र कर ले।

अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये श्रीभगवन्नामजप और श्रीहरियश-श्रवण अमोघ उपाय है। जो इन दोनोंके द्वारा अपने हृदयको पवित्र कर लेते हैं, उन्हींके हृदय-मन्दिरमें बैठकर भगवान् ज्ञान-दीप जलाकर दीवाली मनाते हैं—जो कभी बुझता ही नहीं, सतत प्रकाशित ही रहता है। (गीता १०। १०-११, ४। ३५)।

श्रीभगवन्नामजप तथा श्रीहरिकथा-श्रवणसे ज्ञान स्वयं होता है और ज्ञानसे भक्ति होती है। वास्तवमें तो श्रीभगवन्नाम, श्रीभगवत्कथा और श्रीभगवद्‌भक्ति—ये तीनों ही मणि हैं, जो बिना घृत और बातीके ही प्रकाश देती रहती हैं। इनको हवा बुझा सकती नहीं और न पतंगोंके आक्रमणका ही भय है।

(१)

राम नाम मनिदीप धरु जीह देहरीं द्वार।
तुलसी भीतर बाहेरहुँ जौं चाहसि उजिआर॥

(२)

राम चरित चिंतामनि चारू। संत सुमति तिय सुभग सिंगारू॥

(३)

राम भगति चिंतामनि सुंदर। बसइ गरुड़ जाके उर अंतर॥
परम प्रकास रूप दिन राती। नहिं कछु चहिअ दिआ घृत बाती॥
मोह दरिद्र निकट नहिं आवा। लोभ बात नहिं ताहि बुझावा॥
प्रबल अबिद्या तम मिटि जाई। हारहिं सकल सलभ समुदाई॥

आजके युगमें जब चारों ओर हाहाकार मचा हुआ है, कहीं दीवाली हो रही है तो कहीं दीवाला, गायका घीतक नहीं मिलता, अमीरोंकी अटारियोंपर बिजलीकी बत्तियोंके जलानेमें सैकड़ों रुपये खर्च होते हैं तो कहीं गरीबोंके घरपर मिट्टीका दीपक भी नहीं। कहीं मालपूआ छनता है तो कहीं सत्तू भी नहीं मिलता—कितना अच्छा होता कि श्रीगीता-रामायणके पाठक ऐसे ही दीवाली मनाते, जैसी रामराज्यमें मनायी गयी थी।

सब गुनग्य पंडित सब ग्यानी। सब कृतग्य नहिं कपट सयानी॥
सब कें गृह गृह होहिं पुराना। रामचरित पावन बिधि नाना॥
नर अरु नारि राम गुन गानहिं। करहिं दिवस निसि जात न जानहिं॥
बहु मनि रचित झरोखा भ्राजहिं। गृह गृह प्रति मनि दीप बिराजहिं॥

घरमें घीका दीप और हृदयमें ज्ञान-दीप। यही याद दिलानेके लिये यह दीवाली प्रतिवर्ष आती है और चली जाती है।

अति वाचालताका दुष्परिणाम

एक राजा बहुत अधिक बोलता था। उसका मन्त्री विद्वान् और हितचिन्तक था। इसलिये सोचता रहता था कि राजाको कैसे इस दोषसे मुक्त करूँ और वह ज्ञान दूँ, जो कि मनुष्यके हृदयमें बहुत गहराईसे उतरकर उसके स्वभावका अंग बन जाता है। मन्त्री हमेशा राजाके हितकी सोचता रहता था और उचित अवसरकी तलाशमें था कि राजाको अपने इस दोषका आभास हो और उसके द्वारा होनेवाली हानिको समझकर उसमेंसे निकल जायँ।

एक दिनकी बात है, राजा मन्त्रीके साथ उद्यानमें घूमते हुए एक शिलापर बैठ गया। शिलाके ऊपर एक छायादार पेड़ था। उस आमके पेड़पर कौवेका एक घोंसला था, उसमें काली कोयल अपना अण्डा रख गयी। कोयल अपना घोंसला नहीं बनाती, वरन् कौवेके घोंसलेमें ही अण्डा रख देती है। कौवी उस अण्डेको अपना समझकर पालती रहती है। आगे चलकर उसमेंसे कोयलका बच्चा निकला। कौवी उसे अपना पुत्र समझकर चोंचसे चुग्गा ला, उसे पालती थी। कोयलके बच्चेने असमय जबकि उसके पर भी नहीं निकले थे, कोयलकी आवाज की। कौवीने सोचा—'यह अभी विचित्र आवाज करता है, बड़ा होनेपर क्या करेगा?' कौवीने चोंचसे मार-मारकर उसकी हत्या कर दी और घोंसलेसे नीचे गिरा दिया। राजा जहाँ बैठा था, वह बच्चा वहीं उसके पैरोंके पास गिरा।

राजाने मन्त्रीसे पूछा—'मित्र! यह क्या है?' मन्त्रीको राजाकी भूल बतानेका यह अवसर मिल गया। इसी अवसरका फायदा उठाकर मन्त्रीने कहा—'महाराज! अति वाचाल (बहुत बोलनेवालों)-की यही गति होती है।'

पूछनेपर मन्त्रीने पूरी बात राजाको समझाकर बतायी कि कैसे यह बच्चा असमय आवाज करनेसे नीचे गिरा और मृत्युको प्राप्त हुआ। यदि यह चुप रहता तो यथासमय घोंसलेसे उड़ जाता। इतना कहकर मन्त्रीने राजाको मौका देखकर उसकी वाचालता दूर करनेके लिये यह प्रत्यक्ष उदाहरण बताकर नीति बतायी।

'चाहे मनुष्य हो, चाहे पशु-पक्षी; असमय अधिक बोलनेसे इसी तरह दुःख भोगते हैं।' उसने वाणीके अन्य दोष और उसके दुष्परिणाम राजाको बताये।

'दुर्भाषित वाणी हलाहल विषके समान ऐसा नाश करती है, जैसा तेज किया हुआ शस्त्र भी नहीं कर सकता। इसीलिये बुद्धिमान् व्यक्तिको चाहिये कि वाणीकी समय-असमय रक्षा करे। अपने समकक्ष व्यक्तियोंसे कभी अधिक बातचीत न करे। जो बुद्धिमान् समयपर विचारपूर्वक थोड़ा बोलता है, वह सबको अपने वशमें कर लेता है।'

बुद्धिमान् और प्रज्ञावान् मन्त्रीकी बात सुनकर राजा अति वाचालताके दोषको दूरकर मितभाषी हो गया और सुखपूर्वक राज्य करने लगा, उसने प्रसन्न होकर मन्त्रीको मान और वैभवसे कृतार्थ किया।

[जातक कथाओंसे साभार] [प्रेषिका—श्रीमती राजकुमारीजी मोर]

भगवान्‌की लीला

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

अबतक जो कुछ भी हुआ, अब हो रहा है और आगे होगा, सभी श्रीभगवान्‌का रचा हुआ है। सृजन और संहार आदि सभी उन नित्यलीलामयकी लीलाके ही अंग हैं। यह लीला अनादि है, अनन्त है, नित्य है, नियमित है और अनिवार्य है। सृजनका मधुर रूप और संहारका करालरूप दोनों ही उन्हींके स्वरूप हैं। वे ही वृन्दावनके माखनप्रेमी मुरलीधर हैं और वे ही कुरुक्षेत्र-समरानलके प्रारम्भमें अर्जुनको भयसे कँपा देनेवाले भयंकरमूर्ति साक्षात् काल हैं। वस्तुतः लीलामें किसी भी रसका प्राकट्य हो, लीला नित्यानन्दमयी ही है। भयानक-से-भयानक लीलाके अन्दर उनका नित्य सुन्दर मनोहर मुसकराता हुआ मुखारविन्द छिपा है। लीलासे लीलाविहारीका बिलगाव कैसे हो? भगवत्कृपासे जिन भक्तोंको लीलादर्शनके योग्य नेत्र प्राप्त हो गये हैं, वे एकमात्र श्रीभगवान्‌को ही विविध रूपोंमें चित्र-विचित्र लीला करते देखते हैं और प्रत्येक लीलामें ही उनके मधुर दर्शन और उनके सुकोमल कर-कमलका स्पर्श पाकर अपार्थिव आनन्दलाभ करते हैं। यह भी स्मरण रखना चाहिये कि भगवान्‌की इस लीलामें कुछ भी अनहोनी बात नहीं होती। जो कुछ होता है, वही होता है जो होना है; और जो होना है वही ठीक है, वही मंगलमय है। मंगलमय भगवान्‌का कोई भी विधान मंगलसे रहित नहीं हो सकता। इसीलिये महात्मा पुरुष प्रत्येक घटनाको भगवान्‌का अवश्यम्भावी मंगलमय विधान मानकर सन्तुष्ट रहते हैं और विधानमें स्वयं विधाताका साक्षात्कारकर कृतकृत्य होते रहते हैं। ऐसे कृतकृत्य महात्मा इस सत्यका प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं कि उनके अन्तःकरण और इन्द्रियोंसे होनेवाली प्रत्येक चेष्टा श्रीभगवान्‌की शक्तिद्वारा ही निर्दिष्ट और संचालित होती है। वे स्वयं कुछ भी नहीं करते-कराते; जो कुछ होता है, सब भगवान्‌की प्रकृति (शक्ति) ही करती है। कार्य तो सभी जगह भगवान्‌की प्रकृतिके द्वारा ही होते हैं, परंतु दूसरे लोग इस सत्यका अनुभव न करके स्वयं अपनेको कर्ता मानते हैं और महात्मा लोग भगवत्प्रकृतिका कर्तृत्व प्रत्यक्ष ही देख पाते हैं, इसीलिये वे ऐसा अहंकार नहीं करते। अवश्य ही, वास्तवरूपमें महात्माओंका यह अकर्तृत्व और साधारण जीवोंका कर्तृत्व भी भगवान्‌की लीलाके ही अंग हैं। परंतु यह तत्त्व जबतक प्रत्यक्ष न हो जाय, तबतक न तो कोई इसको इस प्रकार मान सकता है और न मानना ही चाहिये। इसीलिये साधारण लोगोंकी दृष्टिमें महात्मा लोग लोकहितार्थ सत्कर्म करते हुए देखे जाते हैं और उनके आदर्शके अनुसार साधारण लोग अपना कर्तव्य निश्चय करके कर्ममें लगते हैं।

यहाँ साधकोंको ऐसी धारणा करनी चाहिये कि यह जगत् भगवान्‌का नाट्यमंच है और हम सभी इसमें अभिनय करनेवाले ऐक्टर हैं। जगन्नाटकके सूत्रधारने हमारे लिये जो खेल नियत कर दिया, उसीको ईमानदारीसे खेलना हमारा कर्तव्य है। असलमें ऐक्टरके मनमें कोई स्वतन्त्र इच्छा नहीं हुआ करती। नाटकके स्वामीकी आज्ञाके अनुसार अपना पार्ट करना ही उसकी एकमात्र इच्छा और चेष्टा होती है। इसके अनुसार अपनी सारी कामनाओंका त्यागकर भगवान्‌के इस संसाररूपी नाट्यमंचपर भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये भगवान्‌के संकेतानुसार कर्म करना ही अपना परम धर्म है, यही उनकी उपासना है और यही भक्ति है। स्वामीके आज्ञानुसार कर्म न करना 'नमकहरामी' है और स्वामीकी सम्पत्तिको अपनी मानना 'बेईमानी'। नमकहरामी और बेईमानी दोनोंसे बचकर स्वकर्मके द्वारा स्वामीकी पूजा करनी चाहिये। चतुर ऐक्टरकी न तो किसी स्वाँगविशेषमें आसक्ति होती है, न किसी कर्मविशेषमें। उसे जब जो स्वाँग मिलता है, वह उसीके अनुरूप दक्षताके साथ अभिनय करता है। इसीसे भगवान्‌ने कहा है—'अर्जुन! तुम आसक्ति छोड़कर भगवान्‌के लिये कर्मोंका भलीभाँति सम्पादन करो।' (**'तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसंगः समाचर'**) जिस साधककी प्रत्येक कर्ममें यह दृष्टि रहती है तथा बिना किसी आसक्ति और कामनाके इस प्रकार कर्तव्य-कर्म

करता है, वह आगे चलकर भगवान्‌के हाथका सच्चा यन्त्र बन जाता है। उसकी कर्तव्य-बुद्धि भी भगवान्‌की विशुद्ध और स्पष्ट संचालन-क्रियाके अन्दर विलुप्त हो जाती है। फिर उसमें कोई अहंकार भी नहीं रहता। वह जड़ कठपुतलीकी भाँति भगवान् जैसे नचाते हैं, वैसे ही नाचता है। वे जो कुछ कराते हैं, वही करता है। वस्तुत: तात्त्विक दृष्टिसे भगवान्‌से भिन्न उसका पृथक् अस्तित्व ही नहीं रह जाता। वह भगवान्‌में रहता है; भगवान् उसमें। वह इसका प्रत्यक्ष अनुभव करता है। यह तो हुई संक्षेपमें सिद्धान्तकी और साधकके भाव तथा कर्तव्यकी बात। अब इस संहारलीलाके सम्बन्धमें कुछ विचार करना है—

ऊपरके विवेचनसे यह तो समझमें आ ही गया होगा कि यह संहार भी भगवान्‌की एक आवश्यक और अनिवार्य लीला या उनका मंगलविधान ही है। विश्व-शरीरमें जब सड़न पैदा हो जाती है, तब स्वाभाविक ही उस सड़नको मिटानेके लिये विश्वस्रष्टाको एक बड़ा ऑपरेशन करना पड़ता है। ऐसे ऑपरेशन अनादि कालसे अनेक युगोंमें होते आये हैं और होते रहेंगे। ये आवश्यक हैं और अनिवार्य हैं तथा इनका परिणाम कल्याणमय ही होता है। सारी सड़ी मवाद निकलकर जब शरीर विषमुक्त हो जाता है, तब स्वाभाविक ही सुन्दर स्वस्थता प्राप्त होती है। हाँ, ऑपरेशन हो जानेपर जैसे घाव सूखनेमें कई दिन लग जाते हैं और इस बीचमें रोगीको घावकी वेदना सहनी पड़ती है। इसी प्रकार समष्टि शरीरको भी संहारके बाद कुछ समयतक विषाद, निराशा, अवसन्नता और विशृंखलताकी यातना सहन करनी पड़ती है।

प्रकृति स्वभावत: अधोगामिनी है। यदि निरन्तर ऊँचे उठने-उठानेका प्रयत्न न किया जाय तो स्वाभाविक ही प्रकृति पतनकी ओर बढ़ती है। उसे पतनसे बचानेके लिये सदा जाग्रत् रहने और प्रयत्न करनेकी आवश्यकता होती है। समष्टि जगत्‌में भी जीवोंके कर्मवश परमात्माकी प्रेरणासे ऐसा नियमित महाप्रयत्न भगवान्‌की प्रकृतिके द्वारा ही होता है, उसे कोई रोक नहीं सकता।

प्रेमका प्रभाव

जॉन होपकिन्स विश्वविद्यालयके प्रोफेसरोंने विद्यार्थियोंको एक शोधकार्य दिया कि वे एक आपराधिक झुग्गी बस्तीमें जायँ और वहाँ रहनेवाले १२ से १६ वर्षके २०० किशोरोंके परिवेश और परवरिशका अध्ययन करके उनके भविष्यका अनुमान लगायें।

विद्यार्थियोंने सर्वेक्षण-अध्ययन-विश्लेषण करके निष्कर्ष निकाला कि इनमेंसे लगभग ९० प्रतिशत बच्चे भविष्यमें किसी-न-किसी मामलेमें जेल जा चुके होंगे।

२५ साल बाद नये विद्यार्थियोंको फिर वहाँ भेजा गया कि वे पता लगायें कि पिछले शोधका नतीजा कितना सही रहा। नवीन शोधार्थियोंको लगभग १८० बच्चे, जो अब वयस्क बन चुके थे, यहाँ-वहाँ मिल गये, लेकिन उन शोधार्थियोंको यह जानकर आश्चर्य हुआ कि उनमेंसे केवल ४ ही कभी-न-कभी जेल गये थे।

आखिर शोधका परिणाम इतना गलत कैसे हो गया! अक्सर शोधार्थियोंको उन लोगोंसे एक ही जवाब मिलता था, 'एक भली शिक्षिका थीं, जो हमें पढ़ाया करती थीं।' लेकिन अब उन शिक्षिकाके पते-ठिकानेकी जानकारी किसीको नहीं थी। आखिरकार खोज करनेपर पता लगा कि अब वे शिक्षिका एक वृद्धाश्रममें रहती हैं।

वहाँ जाकर जब उन शिक्षिकासे पूछा गया कि इन बच्चोंमें आप इतना बड़ा परिवर्तन कैसे ला सकीं? तो वे बोलीं, 'मैं यह कैसे कर सकती थी!'

फिर स्मृतियोंकी गहराईमें जाकर कुछ सोचते हुए वे बोलीं, 'मैं उन बच्चोंको बहुत प्रेम करती थी।'

प्रेषक—श्रीप्रशान्तजी अग्रवाल

नाम-साधना

(समर्थ सद्गुरु श्रीब्रह्मचैतन्यजी महाराज गोंदवलेकर)

देहबुद्धिके विस्मरणके लिये नामस्मरण

हमें स्वयंकी पहचान करानेके लिये नामस्मरण ही एक उपाय है। परमेश्वरका अंश हर प्राणीमें होता है, यह बात सच है, लेकिन इसे समझनेकी बुद्धि केवल मनुष्यमें ही है। फिर भी उसका पतन किस प्रकार होता रहता है, इसे जानो। जीव मूलत: परमेश्वरस्वरूप है, अत: मनुष्य प्रारम्भमें कहता है—'मैं ही वह अर्थात् परमेश्वर हूँ;' इस स्थितिसे उसकी अवनति होती है, तब वह कहता है—'मैं उसका हूँ।' यहीं उसकी अवनति रुकती नहीं, फिर आगे चलकर वह कहता है—'मेरा और उसका अर्थात् परमेश्वरका कोई सम्बन्ध नहीं है।' इस अवनतिका कारण है, देहबुद्धिका प्रभाव इतना बढ़ता है कि अन्तमें उसकी पक्की भावना यह होती है कि मैं देह ही हूँ। यद्यपि ऐसी भावना दृढ़ होती है तो भी, अनजानेसे क्यों न हो, मनुष्यके मुँहसे जो सत्य है वही कहा जाता है, जैसे—किसी व्यक्तिके मित्रकी मृत्यु होती है, तब वह कहता है—'मेरे मित्रका स्वर्गवास हो गया।' इसका मतलब है कि वह अपने सामने जो मित्रकी देह थी, उसको मित्र नहीं समझता था। शरीरके भीतर जो चैतन्य होता है, जो ईश्वरका अंश है, उसीको मित्र मानता रहा। अर्थात् जो सत्य होता है, वही उसके मुँहसे प्रकट होता है। ऐसी स्थिति होते हुए भी वह अपने लिये यह भावना निरन्तर नहीं रखता और वह शरीरको ही स्वयं यानी आत्मा समझकर व्यवहार करता है। इसका असली कारण यह है कि वह सत्य 'मैं' को भूल गया है और देहबुद्धि अधिक प्रबल और प्रभावी हो गयी है। अब इसके लिये एक ही उपाय है, जिस मार्गसे 'मैं' की अवनति हुई है, उसी मार्गसे उलटे जाकर प्रगत होना। अत: पहली बात यह है कि अब मैं जो देहरूप बन गया हूँ, वह 'मैं' उसका यानी परमेश्वरका हूँ, ऐसी भावना दृढ़ करना। इस भावनाकी परमावस्था यानी मैं ईश्वर ही हूँ—यह भावना दृढ़ हो जाना। यह कैसे सधेगा? जिसके विस्मरणसे मेरी अवनति हुई है, उसका स्मरण करना। स्मरणके लिये सबसे अच्छा साधन है—ईश्वरका नाम। इसके कारण स्मरण निरन्तर होता रहेगा, नामस्मरणके प्रति लगन लगेगी और मैं वास्तवमें कौन हूँ—यह ज्ञात होगा और अपनी खुदकी पहचान होगी। सत्य परमार्थ ऐसा है, और बहुत सरल है, किंतु सही रास्तेसे जाना चाहिये। किसी गाँठको खोलना हो तो रस्सीका कौन-सा छोर खींचना है, यह मालूम होना चाहिये। परमार्थकी बात भी ठीक ऐसी ही है।

जब यह मालूम होगा कि मैं कौन हूँ तो परमात्माकी पहचान अपने-आप हो जायगी। दोनोंका स्वरूप समान है। अर्थात् दोनों अभिन्न हैं। परमात्मा निर्गुण है, तब उसको जाननेके लिये क्या हमें भी निर्गुण नहीं होना चाहिये? इसलिये देहबुद्धिका त्याग करना चाहिये। किसी भी चीजको जब हम जानते हैं तो उस वस्तुसे हमें एकरूप होना पड़ता है, बिना उसके हम उस वस्तुको जान ही नहीं सकते। अत: यदि हम परमात्माको जानना चाहते हैं, तो क्या हमें परमात्मा नहीं होना चाहिये। इसीको 'साधु बनकर साधुको जानना' कहते हैं। संस्कृतमें कहते हैं **'शिवो भूत्वा शिवं यजेत्।'**

नामस्मरणसे सद्बुद्धि निर्माण होती है

कौरव पाण्डवोंको कम-से-कम पाँच गाँव दे दें तो युद्धकी नौबत टल जायगी, इस हेतुसे भगवान् स्वयं बीच-बचावके लिये दूत बनकर दुर्योधनके पास गये। उस समय दुर्योधनने कहा—'भगवन्, आप जो कह रहे हैं, सब ठीक है। नीति और न्यायकी दृष्टिसे आप जैसा कह रहे हैं, वैसा कुछ करना जरूरी है। लेकिन वैसा करनेकी बुद्धि नहीं होती तो मैं क्या करूँ? आप सर्व-शक्तिमान् हैं, तो आप मेरी बुद्धि ही पलटा दीजिये, जिससे सारी समस्या ही एकदम हल हो जायगी।' लेकिन ऐसी स्थिति निर्माण नहीं हुई और यह आप सब जानते हैं कि युद्ध होकर रहा। यही बात रावणके बारेमें भी घटी है। अत: यह स्पष्ट है कि सगुणरूपके अवतारसे वासना या बुद्धि पलटानेका काम नहीं होता।

सद्बुद्धि-निर्माण करनेकी शक्ति सिर्फ भगवान्‌के नाममें ही है। इसलिये त्रिकालमें अबाधित रहनेवाले नामके अवतारकी अब आवश्यकता है। नामका मतलब ही भगवान् है। वही नाम हम अनन्य भावसे लें।

किसी एक आदमीका स्वास्थ्य अच्छा था। लेकिन उसके पैरमें कोई बीमारी पैदा हुई। डॉक्टरने कहा—'यदि जान बचानी है, और शरीर बचाना है तो पैर काटना पड़ेगा।' अब जरा सोचो, केवल प्राण है, लेकिन न हाथ हिलता है, न पैर हिलता है, न आँखोंसे दिखायी देता है, न कानोंसे सुनायी देता है, फिर प्राणका क्या उपयोग? इसके विपरीत सब कुछ है, लेकिन प्राण नहीं है तो शरीरका क्या उपयोग? प्राण है, लेकिन एकाध अवयव नहीं है तो जीवन चलता है। मान लो कानोंसे सुनायी नहीं देता, कोई बात नहीं, उससे क्या बिगड़नेवाला है? उपासना, अनुसन्धान प्राणहीकी तरह माना जाय। शेष उपाधि है तो शरीरके इन्द्रियोंकी तरह मानी जाय, लेकिन अनुसन्धानमें खण्ड नहीं होना चाहिये, अगर अनुसन्धानमें खण्ड हो गया तो मानो प्राण ही गँवा बैठेंगे। अनुसन्धान सँभालकर जो कर पायँगे वही हमें करना चाहिये। यदि अनुसन्धान न सँभालते हुए अन्य बातें ही हम करते रहेंगे तो निराश होना पड़ेगा।

हम जो चाहते हैं वह नहीं हो पा रहा है, इसलिये हम दुखी हैं, ऐसा कहनेके बजाय, जो हम चाहते हैं, वही दु:खका मूल कारण है, यह मानना चाहिये। फलानी बात सुखदायक है, यह कल्पना ही दु:खकी जड़ है—यह भावना ध्यानमें रखकर हमें सारा बर्ताव करना चाहिये। बिल्ली चूहेसे खिलवाड़ करती है, वह उसे पकड़ती है, फिर छोड़ देती है, फिरसे पकड़ती है, फिरसे छोड़ देती है, लेकिन अन्तमें वह उसे दबोचती ही है और प्राण लेती है। उसी प्रकार काल हमसे खेल खेलता है। हमें आशामें बाँध रखता है, आगे बढ़ाता है, लेकिन हमें यह पक्का ध्यानमें रखना चाहिये। इस प्रकार किसी बातमें फँस जानेमें कोई लाभ नहीं है। अनुसन्धान बनाये रखेंगे तो लाभ होगा अन्यथा नहीं, मनुष्यका कल्याण अनुसन्धानमें ही है। वरना भविष्य बड़ा कठिन है। अहंभाव रखनेवाले, दूसरोंको ज्ञान सिखानेवाले, विद्वान्, शास्त्री, पण्डित वस्तुत: सभी भ्रममें ही हैं। इसलिये कह रहा हूँ, एक बात करो—'अनुसन्धान (भगवान्‌का निरन्तर स्मरण) बनाये रखकर जो बनता है, वही करो।' **[संग्राहक—श्री गो०सी० गोखले]**

'बोलै नहीं तो गुस्सा मरै'

एक घरमें स्त्री-पुरुष दो ही आदमी थे और दोनों आपसमें नित्य ही लड़ा करते थे। एक दिन उस स्त्रीने अपनी पड़ोसिनके पास जाकर कहा—'बहन! मेरे स्वामीका मिजाज बहुत चिड़चिड़ा है, वे जब-तब मुझसे लड़ते ही रहते हैं और इस तरह हमारी बनी-बनायी रसोई बेकार चली जाती है।' पड़ोसिनने कहा—'अरे! इसमें कौन-सी बात है! मेरे पास एक ऐसी अचूक दवा है कि जब तुम्हारे पति तुमसे लड़ें, तब तुम उस दवाको अपने मुँहमें भर रखा करो; बस, वे तुरंत चुप हो जायँगे।' पड़ोसिनने शीशी भरकर दवा दे दी। उस स्त्रीने दो-तीन बार पतिके क्रोधके समय दवाकी परीक्षा की और उसे बड़ी सफलता मिली। अब तो उसने खुशी-खुशी जाकर पड़ोसिनसे कहा—'बहन! तुम्हारी दवा तो बड़ी कारगर है! उसमें क्या-क्या चीजें पड़ती हैं, बता दो तो मैं भी बना रखूँ।' पड़ोसिनने हँसकर कहा—'बहन! शीशीमें साफ जलके सिवा और कुछ भी नहीं था। काम तो तुम्हारे मौनने किया। मुँहमें पानी भरा रहनेसे तुम बदलेमें बोल नहीं सकी और तुम्हें शान्त पाकर उनका भी क्रोध जाता रहा। बस, *'एक मौन सब दुख हरै, बोलै नहीं तो गुस्सा मरै।'*

साधकोंके प्रति—

मैं भगवान्‌का हूँ

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

हम यह तो कहते हैं कि मन मेरा है, बुद्धि मेरी है, इन्द्रियाँ मेरी हैं, प्राण मेरे हैं, पर यह नहीं कहते कि मैं मन हूँ, मैं बुद्धि हूँ, मैं इन्द्रियाँ हूँ, मैं प्राण हूँ। इससे यह सिद्ध हुआ कि 'मैं'-पन 'मेरा'-पनसे अलग है अर्थात् मेरे कहलानेवाले पदार्थोंसे मैं अलग हूँ। विचार करें तो मेरे कहलानेवाले पदार्थ भी वास्तवमें मेरे नहीं हैं, अपितु प्रकृतिके हैं। स्थूल, सूक्ष्म और कारण-शरीरके साथ तादात्म्य करनेके कारण ही ये मेरे प्रतीत होते हैं।

अपना स्वरूप स्थूल, सूक्ष्म और कारण—तीनों ही शरीरोंसे अलग है। अत: स्वरूपमें इन शरीरोंकी जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति—तीनों ही अवस्थाएँ नहीं हैं। अवस्थाएँ बदलती हैं और स्वरूप नहीं बदलता। स्वरूप इन अवस्थाओंको जाननेवाला है, अत: इनसे अलग है। यदि इन अवस्थाओंको जाननेवाला अवस्थाओंसे अलग न होता तो इन तीनों अवस्थाओंकी गणना कौन करता? और इनके बदलनेको कौन देखता? अवस्थाएँ तीन हैं और ये बदलती हैं—इसमें किसीको भी सन्देह नहीं। तात्पर्य यह निकला कि अपना स्वरूप अवस्थाओंसे अलग है।

हम सबका यह अनुभव है कि अवस्थाएँ हमारे बिना नहीं रह सकतीं, पर हम अवस्थाओंके बिना रह सकते हैं, और रहते भी हैं। जब जाग्रत्‌से स्वप्न-अवस्थामें जाते हैं, तब उस (जाग्रत् और स्वप्नकी) सन्धिमें कोई अवस्था नहीं होती। इसी प्रकार स्वप्नसे सुषुप्ति-अवस्थामें जाते हैं, तब उस सन्धिमें कोई अवस्था नहीं होती। परंतु उनकी सन्धिमें कोई अवस्था न होनेपर भी हम रहते हैं। स्वप्न-अवस्था चली गयी और जाग्रत्-अवस्था आ गयी, सुषुप्ति-अवस्था चली गयी और जाग्रत्-अवस्था आ गयी—इस प्रकार अवस्थाओंके बदलनेको हम जानते हैं। इससे सिद्ध हुआ कि हम अवस्थाओंसे अतीत हैं।

'मैं' शब्दके दो अर्थ हैं—एक सत्तारूप वास्तविक 'मैं' और दूसरा माना हुआ 'मैं'। वास्तविक 'मैं' सदा ज्यों-का-त्यों रहता है, पर माना हुआ 'मैं' किसी भी समय एक नहीं रहता, अपितु बदलता रहता है; जैसे—मैं जागता हूँ, मैं सोता हूँ, मैं धनी हूँ, मैं निर्धन हूँ, मैं विद्वान् हूँ, मैं मूर्ख हूँ, मैं साधु हूँ, मैं गृहस्थ हूँ इत्यादि। यह माना हुआ 'मैं' परस्पर विरुद्ध मान्यता भी करता है; जैसे—पिताके सामने 'मैं पुत्र हूँ' और पुत्रके सामने 'मैं पिता हूँ'। अत: यह माना हुआ 'मैं' हमारा वास्तविक स्वरूप नहीं है। इस 'मैं'को पकड़नेसे ही हम परिच्छिन्न होते हैं; क्योंकि जिसके साथ हम 'मैं' मानते हैं, वह परिच्छिन्न (एकदेशीय) है। अपनी वास्तविक सत्तामें परिच्छिन्नता नहीं है।

मानी हुई परिच्छिन्नता मिटानेके लिये साधक ऐसा मान ले कि 'मैं भगवान्‌का हूँ' अथवा विवेकपूर्वक यह मान ले कि माना हुआ 'मैं' अर्थात् असत् मेरा स्वरूप नहीं है। स्वरूपके प्रकाशमें मन-बुद्धिके समान 'मैं' पन भी प्रकाशित होता है। गहरा विचार किया जाय तो ज्ञान (बोध) वस्तुत: असत्‌का ही होता है, सत्‌का नहीं। 'मैं हूँ' इस प्रकार अपनी सत्ताका ज्ञान तो रहता ही है, और इसमें किसीको सन्देह नहीं होता। परंतु अपनी सत्तामें जो असत्‌को मिलाया हुआ है, उस असत्‌का ज्ञान हमें नहीं होता। यह सिद्धान्त है कि असत्‌का ज्ञान असत्‌से अलग होनेपर होता है, और सत्‌का ज्ञान सत्‌से अभिन्न होनेपर होता है; क्योंकि वास्तवमें हम असत्‌से भिन्न और सत्‌से अभिन्न हैं। अतएव जिस क्षण असत्‌का ज्ञान होता है, उसी क्षण असत्‌की निवृत्ति हो जाती है अर्थात् असत्‌से अपनी भिन्नताका बोध हो जाता है। असत्‌से भिन्नताका बोध होते ही सत्‌में हमारी स्थिति स्वत: सिद्ध है, करनी नहीं पड़ती। वह सत् ही जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति—तीनों अवस्थाओंको, उनके परिवर्तनको और उनके अभावको जानता है। जाग्रत्‌में स्वप्न और सुषुप्तिका अभाव, स्वप्नमें जाग्रत् और सुषुप्तिका अभाव तथा सुषुप्तिमें जाग्रत् और स्वप्नका अभाव होता है। पर अपना अभाव कभी नहीं होता। सब अवस्थाओंमें अपना भाव अर्थात् अपनी सत्ता ज्यों-की-त्यों रहती है। यह सबका अनुभव है। साधकको चाहिये कि वह अपने अनुभवको महत्त्व दे अर्थात् अपने स्वरूपमें अटल भावसे स्थित रहे।

योगदृष्टिकोणमें प्राणायाम

(डॉ० श्रीइन्द्रमोहनजी झा 'सच्चन', पी-एच०डी० (आयुर्वेद), डिप्लोमा इन योगा)

योगसूत्रकार महर्षि पतंजलिके अनुसार प्राणायाम अष्टांगयोगका एक महत्त्वपूर्ण चौथा अंग है। इसके द्वारा ही प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधिकी अवस्थाएँ परिपुष्ट होती हैं। यह दो शब्दोंके योगसे बना है—प्राण+आयाम=प्राणायाम।

वस्तुत: मानव-शरीरमें जीवनका आधार एकमात्र '**प्राण**' है, जो हृदयमें रहता है, जो नाभिसे चलकर हृदय, फुफ्फुस और कण्ठसे होता हुआ श्वासके रूपमें बाहर निकलता है और आकाशमें सदैव व्याप्त रहनेवाले अमृत (शुद्ध वायु यानी ऑक्सीजन)-को पीकर प्रश्वासके रूपमें शरीरमें चला जाता है। यह क्रिया जीवनभर निरन्तर होती रहती है।

सामान्यतया अन्त:श्वसन एवं बहि:श्वसन इस एक युग्मसे एक 'श्वसन' बनता है, जिसकी संख्या प्रति मिनट १६ से २० (औसतन १८) होती है। 'वराहोपनिषद्' (५।३), 'ध्यानबिन्दूपनिषद्' (६१-६२) एवं हंसोपनिषद् (११)-में श्वसन-संख्या अहोरात्रमें अर्थात् पूरे २४ घण्टेमें २१,६०० (इक्कीस हजार छ: सौ) बतायी गयी है, यानी प्रति मिनट १५ बार। ये उपनिषद् योगसम्बन्धी हैं और इनमें यह वर्णन समाधिकी दृष्टिसे है। समाधि मुद्रामें श्वसन-प्रक्रिया मन्द तथा गम्भीर रहनेके कारण श्वसनकी गति या संख्या न्यून रहना स्वाभाविक है।

विश्राम एवं स्वप्नावस्थावाली इस १५ श्वसन-संख्यामें अन्तर अवस्था-भेदके अनुसार हो सकता है। उदाहरणार्थ—उत्तेजना, व्यायाम, परिश्रम, श्वासविकार आदिकी अवस्थामें श्वसनसंख्या २० या इससे भी ऊपर चली जाती है। यहाँतक कि 'अमृतनादोपनिषद्' के श्लोक ३३ के अनुसार—

अशीतिश्च शतं चैव सहस्राणि त्रयोदश।
लक्षश्चैकोननि:श्वास: अहोरात्रप्रमाणत:॥

—यह संख्या प्रतिमिनट ७१ से ७८ तक बन जाती है, स्पष्ट है कि यह संख्या श्वसनक सन्निपात अर्थात् निमोनिया-सदृश विकारावस्थाओंकी है।

श्वास-प्रश्वासकी क्रियाद्वारा ही शरीरस्थ प्राणका गमनागमन होता है। यदि आप ध्यानपूर्वक देखें तो कुछ समयतक दक्षिण नासारन्ध्र पूर्णरूपेण क्रियाशील रहता है तो उस समय वाम नासारन्ध्र पूर्णरूपेण सक्रिय नहीं रहता है। शरीरकी प्रकृतिके अनुसार इस विधिका तारतम्य बना रहता है। योगसूत्र (२।४९)-में योगसूत्रकार महर्षि पतंजलिने भी 'प्राण' शब्दका प्रयोग श्वास-प्रश्वासके अर्थमें किया है, जो लोकभाषामें प्राणका प्रचलित अर्थ है।

शरीरमें स्थित 'प्राण' को पाँच वर्गोंमें वर्गीकृत किया गया है। यथा—१-प्राण, २-अपान, ३-समान, ४-उदान एवं ५- व्यान।

—इन पाँचोंके द्वारा विलक्षण शरीर-यन्त्रका संचालन होता है। '**प्राण**' का प्रमुख कार्य श्वास भीतर ले जाना और बाहर निकालना है। '**अपान**' का प्रमुख कार्य गुदासे मल, उपस्थसे मूत्र और अण्डकोषोंसे वीर्य बाहर निकालना है। '**समान**' का प्रमुख कार्य रसादिका वितरण सब अंगोंमें करना है। '**उदान**' का प्रमुख कार्य कण्ठनलीके ऊपरके अंगोंका नियन्त्रण करना है। '**व्यान**' का प्रमुख कार्य शरीरमें गति उत्पन्न करना, अंगोंका प्रसारण-आकुंचन (समेटना या बटोरना) करना आदि है।

योगभाष्यकारके अनुसार मुख और नासिकाके द्वारा संचार करनेवाला तथा नासिकाग्रसे लेकर हृदयपर्यन्त रहनेवाला '**प्राण**' है। भुक्त-पीत अन्नादिके रसको समान रूपसे ले जानेके कारण हृदयसे लेकर नाभिपर्यन्त रहनेवाला '**समान**' है। मल-मूत्र-गर्भादिको नीचे ले जानेके कारण नाभिसे लेकर नीचे पैरके तलुएतक रहनेवाला '**अपान**' है। रसादिको नासिकाग्रसे ऊपरकी ओर ले जानेके कारण नासिकाग्रसे लेकर ऊपरकी ओर सिरतक रहनेवाला '**उदान**' है और समस्त शरीरमें व्याप्त रहनेवाला '**व्यान**' है।

इस प्रकार प्राणोंके द्वारा ही शरीरकी सम्पूर्ण क्रियाएँ सम्पादित होती हैं। अत: प्राण ही जीवनशक्ति

है। प्राण ही आयु है। प्राण ही शरीरका बल है। जीवधारियोंके शरीरको धारण करनेवाला प्राण ही है। यह सम्पूर्ण संसार वायुरूप है और वायुको ही प्रभु (स्वामी—सब कुछ करनेमें समर्थ) कहा गया है।

वायुरायुर्बलं वायुर्वायुर्धाता शरीरिणाम्।
वायुर्विश्वमिदं सर्वं प्रभुर्वायुश्च कीर्तितः॥

(च०सं०चि० २८।३)

आयामका अर्थ है—विस्तार, निग्रह, नियन्त्रण, रोकथाम। इस प्रकार प्राणायामका अर्थ हुआ जीवनशक्तिका विस्तार करना, नियन्त्रण करना, रोकथाम करना आदि या यूँ कहें कि 'प्राण' का 'आयाम' ही प्राणायाम है।

उपर्युक्त विवेचनसे यह भी स्पष्ट है कि मानवीय जीवन-अवधि श्वसन-प्रणालीपर निर्भर है तथा प्रतिदिन एक व्यक्ति २४ घंटोंमें २१,६०० बार श्वास लेता है। यदि इस गतिको वह आजीवन बनाये रखे तो उसकी आयु एक सौ वर्षकी होगी, परंतु चलते-दौड़ते, व्यायाम करते, काम, क्रोध, भय इत्यादिके समय श्वासकी गति तीव्र हो जाती है, इससे आयु कम हो जाती है, प्राणायामके अभ्याससे इनके कारण जो गति बढ़ी है, उसकी क्षतिपूर्ति हो जाती है। इस प्रकार आयुमें वृद्धि हो जाती है। श्वास-प्रश्वास-क्रिया जिस प्राणीकी जितनी कम है, उसकी आयु उतनी ही अधिक है तथा जिस प्राणीकी जितनी अधिक है, उतनी ही आयु कम हो जाती है। एक मिनटमें श्वास-प्रश्वासकी संख्याके आधारपर विभिन्न प्राणियोंकी आयुको नीचेकी तालिकामें देखा जा सकता है—

क्र.सं.	प्राणीका नाम	श्वास-प्रश्वासकी संख्या एक मिनटमें	आयु वर्षमें
१.	कछुआ	४-५	१४०-१५५
२.	सर्प	७-८	१२०
३.	मनुष्य	१६-१८	१००
४.	कुत्ता	२८-३०	१३-१४
५.	बन्दर	३१-३२	१३-१६
६.	खरगोश	३८-३९	८-९

प्राणायाम करनेका दूसरा प्रयोजन यह है कि चित्तके अन्दर वृत्तिप्रवाहके केवल दो हेतु हैं। एक तो है वासना अर्थात् भावनामय संस्कार और दूसरा है प्राणप्रवाह, जैसा कि निम्न कथनसे सुस्पष्ट है—

'हेतुद्वयं तु चित्तस्य वासना च समीरणः।'

(योगकुण्डल्योपनिषद्)

प्राणके अन्दर वासनाके बीज और संस्कार ग्रथित रहते हैं। प्राणके स्पन्दनसे मन स्पन्दित होनेपर वृत्तिप्रवाहरूप उत्ताल तरंगमाला उठना प्रारम्भ करती है। इसीलिये प्राण और मनके स्पन्दनके नाश करनेकी व्यवस्था योगशास्त्रमें बार-बार दी गयी है। निरन्तर नाड़ियोंसे होकर प्राणधारा जीव शरीरमें प्रवाहित हो रही है और वही श्वासके रूपमें स्थूलतः दिखायी देती है। यह श्वास ही जीवका जीवन है। परंतु श्वासकी इस प्रकारकी गतिको योगी लोग संसार-वासनाका मूल कारण समझते हैं। इसीलिये योगियोंने ऐसी चेष्टा की कि श्वासका ही निरोध किया जाय; क्योंकि **'पवनो लीयते यत्र मनस्तत्र विलीयते।'** अर्थात् प्राणवायुके स्थिर होनेपर मन स्थिर हो जाता है। योगियोंने चित्तस्थितिके लिये प्राणायामको सर्वश्रेष्ठ उपाय बतलाया है।

योगदर्शनके अनुसार प्राणायामकी परिभाषा— पातंजलयोगदर्शन (योगसूत्र २।४९)-में प्राणायामकी परिभाषा इस प्रकार की गयी है—

'तस्मिन्सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः।'

योगभाष्यकार सूत्रका अर्थ करते हैं कि आसन-सिद्धि हो जानेपर बाह्य वायुको ग्रहण करना श्वास और उदरस्थ वायुका निकालना प्रश्वास है और इन दोनोंकी गतिको रोकना प्राणायाम है।

यहाँ रोकना या निरोधका यह अर्थ नहीं है कि श्वासक्रिया अथवा प्रश्वास-क्रिया कभी होनी ही नहीं है, अपितु श्वास-प्रश्वासकी गति जो निरन्तर चलती रहती है, उस गतिका निरोध अर्थात् जब और जबतक चाहे उदरस्थ वायु अन्दर ही स्थिर रहे अथवा यथेच्छकालतक बाह्य वायुको अन्दर लेनेकी आवश्यकताका अनुभव ही न हो।

योग-साधनाके क्रममें श्वासको अन्दर ले जाना, श्वासको बाहर निकालना और श्वासको रोकना—इन

तीनों क्रियाओंके योगको प्राणायाम कहते हैं। योगकी भाषामें श्वास खींचनेको 'पूरक', बाहर निकालनेको 'रेचक' और रोक रखनेको 'कुम्भक' कहते हैं। प्राणायाम कहनेसे रेचक, पूरक और कुम्भककी क्रिया समझी जाती है, जैसा कि योगियाज्ञवल्क्य (६।२)-में कहा गया है—

'प्राणायाम इति प्रोक्तो रेचकपूरककुम्भकैः।'

स्वामी शिवानन्दके अनुसार—

प्राणायाम प्राण तथा चित्तकी वृत्तियोंका निरोध है। यह श्वासका नियमन है। यह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण चरण है। प्राणायामका उद्देश्य प्राणका नियन्त्रण है। चित्तकी वृत्तियोंपर नियन्त्रण प्राप्त करनेके लिये प्राणायाम श्वासके नियमनसे प्रारम्भ किया जाता है। दूसरे शब्दोंमें प्राणायाम श्वासके नियमनद्वारा चित्तकी वृत्तियोंपर पूर्ण नियन्त्रण है।

यदि आप प्राणपर नियन्त्रण कर सकते हैं तो आप ब्रह्माण्डकी सभी मानसिक तथा भौतिक शक्तियोंपर पूर्ण नियन्त्रण कर सकते हैं। योगी उस सर्वव्यापी अभिव्यक्त शक्तिपर भी नियन्त्रण कर सकता है, जो चुम्बकत्व, विद्युत्, गुरुत्वाकर्षण, स्नायु-प्रवाह, चित्तवृत्ति-जैसी सभी शक्तियोंका वस्तुतः ब्रह्माण्डकी भौतिक तथा मानसिक समस्त शक्तियोंका उद्गम-स्रोत है।

यदि व्यक्ति प्राणको नियन्त्रित कर लेता है तो मन भी नियन्त्रित हो जाता है। जिस व्यक्तिने अपने मनको वशमें कर लिया है, उसने अपने प्राणको भी वशमें कर लिया है।

हठयोगप्रदीपिकाकारने लिखा है, जिसका आसन दृढ़ हो गया है, जिसने मन और इन्द्रियोंको वशमें कर रखा है तथा जो हितकर, पथ्य भोजन परिमित मात्रामें करता है, वह प्राणायामका अधिकारी है। यथा—

अथासने दृढे योगी वशी हितमिताशनः।
गुरूपदिष्टमार्गेण प्राणायामान् समभ्यसेत्॥

(हठयोगप्रदीपिका २।१)

'त्रिशिख ब्रह्मणोपनिषद्' के अनुसार यम, नियम और आसनोंसे जिसने नाड़ियोंकी शुद्धि की हो, वे ही प्राणायामके अधिकारी माने जाते हैं। यथा—

यमैश्च नियमैश्चैव आसनैश्च सुसंयुतः।
नाडीशुद्धिं च कृत्वाऽऽदौ प्राणायामं समाचरेत्॥

योगशास्त्रके अनुसार बिना आसन सुदृढ़ हुए चलते-फिरते प्राणायाम करनेसे योगकी सिद्धि असम्भव है, उलटे भाँति-भाँतिके शारीरिक और मानसिक रोग उत्पन्न हो सकते हैं। बिना आसन बाँधे हुए साँसको रोकना और छोड़ना प्राणायाम नहीं है।

प्राणायामके भेद—योगसूत्रकार महर्षि पतंजलिके अनुसार प्राणायामके तीन भेद हैं, जैसे—

१-बाह्य (रेचक), २-आभ्यन्तर (पूरक) और ३-स्तम्भवृत्ति (कुम्भक)। ये तीनों प्राणायाम दीर्घ और सूक्ष्म होते हैं, जैसा कि पातंजलयोगदर्शनके निम्न सूत्रसे सुस्पष्ट है—

बाह्याभ्यन्तरस्तम्भवृत्तिर्देशकालसङ्ख्याभिः परिदृष्टो दीर्घसूक्ष्मः। (यो०सू० २।५०)

वृत्तिकार भोजके अनुसार बाह्य, आभ्यन्तर और स्तम्भवृत्ति प्राणायामका नाम क्रमशः रेचक, पूरक और कुम्भक है। यथा—१-**बाह्यवृत्तिः श्वासो रेचकः** अर्थात् बाह्यवृत्तिवाला श्वास रेचक कहा जाता है। योगभाष्यके व्याख्याकार हरिहरानन्दारण्यने रेचक प्राणायामका निम्न लक्षण बतलाया है—

निष्क्राम्य नासाविवरादशेषं
प्राणं बहिः शून्यमिवानिलेन।
निरुध्य सन्तिष्ठति रुद्धवायुः
स रेचको नाम महानिरोधः॥

(भास्वती)

अर्थात् सम्पूर्ण प्राण (वायु)-को नासिका-मार्गसे बाहर निकालकर अन्तःकोष्ठको वायुशून्य करके स्थिर रखना। यह महान् निरोध 'रेचक' प्राणायाम कहलाता है।

महर्षि याज्ञवल्क्यके अनुसार उदरसे बाहरकी ओर वायुका जो रेचक किया जाता है, वह रेचक प्राणायाम कहलाता है।

स्वामी शिवानन्दजीके शब्दोंमें श्वासको बाहर

निकालकर उसकी स्वाभाविक गतिका अभाव करना रेचक प्राणायाम है। यह प्राणायामका प्रथम प्रकार है।

योगभाष्यकार महर्षि व्यासने बाह्य प्राणायामका निम्न लक्षण प्रतिपादित किया है—

यत्र प्रश्वासपूर्वको गत्यभावः स बाह्यः

(यो०सू० २।५० पर भाष्य)

अर्थात् जहाँपर श्वास छोड़ते हुए श्वास-ग्रहणकी गतिका अवरोध होता है, वह बाह्य रेचक प्राणायाम है।

२-'**अन्तर्वृत्तिप्रश्वासः पूरकः**' अर्थात् आभ्यन्तर वृत्तिवाला प्रश्वास पूरक कहा जाता है। हरिहरानन्दारण्यने पूरक प्राणायामका निम्न लक्षण बतलाया है—

बाह्यस्थितं प्राणपुटेन वायुमाकृष्य तेनैव शनैः समन्तात्।
नाडीश्च सर्वाः परिपूरयेद्यः स पूरको नाम महानिरोधः॥

(भास्वती)

अर्थात् बाहर स्थित वायुको नासिकापुटके द्वारा धीरे-धीरे भीतर खींचकर शरीरान्तर्गत सभी नाड़ियोंको पूरित कर दे। यह महान् 'पूरक' प्राणायाम कहा जाता है।

महर्षि याज्ञवल्क्यने पूरक प्राणायामका निम्न लक्षण प्रतिपादित किया है—

'बाह्यादापूरणं वायोरुदरे पूरको हि सः।'

अर्थात् बाहरसे ग्रहणकर वायुके द्वारा उदरको आपूरित करना पूरक प्राणायाम कहा जाता है।

स्वामी शिवानन्दजीके शब्दोंमें—श्वास अन्दर खींचकर उसकी स्वाभाविक गतिका अभाव द्वितीय प्रकारका प्राणायाम है। इसे पूरक कहते हैं।

योगभाष्यकार महर्षि व्यासने आभ्यन्तर प्राणायामका निम्न लक्षण प्रतिपादित किया है—

यत्र श्वासपूर्वको गत्यभावः स आभ्यन्तरः।

(यो०सू० २।५० पर भाष्य)

अर्थात् जहाँपर श्वास ग्रहण करते हुए (श्वास-निः सारणकी) गतिका अवरोध होता है, वह आभ्यन्तर (पूरक) प्राणायाम है।

३-**आन्तरस्तम्भवृत्तिः कुम्भकः** अर्थात् अन्तर-स्तम्भवृत्तिवाला कुम्भक कहा जाता है। अर्थात् शरीरके बाह्य अथवा आभ्यन्तर, किसी प्रदेशपर प्राणकी स्वाभाविक गतिको धारण करना स्तम्भवृत्ति है और यही कुम्भक प्राणायाम है। स्वामी हरिहरानन्दारण्यके अनुसार पूरक प्राणायामका लक्षण निम्न प्रकार है—

न रेचको नैव च पूरकोऽत्र
नासापुटे संस्थितमेव वायुम्।
सुनिश्चलं धारयति क्रमेण
कुम्भाख्यमेतत् प्रवदन्ति तज्ज्ञाः॥

(भास्वती)

अर्थात् रेचक और पूरकका परित्याग करके नासापुटमें संस्थित वायुको ही सुनिश्चत रूपसे धारण करना, यह महानिरोध कुम्भक कहलाता है।

महर्षि याज्ञवल्क्यने कुम्भकका निम्न लक्षण बतलाया है—

'सम्पूर्य कुम्भवद्वायोर्धारणं कुम्भको भवेत्।'

अर्थात् कुम्भ (घट)-की भाँति वायुको पूरित करके उसकी धारणा करना यानी अपनी सामर्थ्यके अनुसार अधिक-से-अधिक देरतक उसे रोके रहना—यह कुम्भक प्राणायाम कहलाता है।

हठयोगमें भी प्राणायाम तीन प्रकारके कहे गये हैं—(१) रेचक, (२) पूरक और (३) कुम्भक। पुनः कुम्भक दो प्रकारके कहे गये हैं—(क) सहित कुम्भक और (ख) केवल कुम्भक। यथा—

प्राणायामस्त्रिधा प्रोक्तो रेचपूरककुम्भकैः।
सहितः केवलश्चेति कुम्भको द्विविधो मतः॥

(हठयोगप्रदीपिका २।७१)

प्राणायाम कई प्रकारके होते हैं और जितने प्रकारके प्राणायाम हैं, उन सबमें पूरक, रेचक और कुम्भक भी भिन्न-भिन्न प्रकारके होते हैं। पूरक करनेमें हम नासिकाके दाहिने छिद्रका अथवा बायेंका अथवा दोनोंका ही उपयोग कर सकते हैं। रेचक दोनों नासारन्ध्रों अथवा एकसे ही करना चाहिये। कुम्भक पूरकके पीछे भी हो सकता है और रेचक भी अथवा दोनोंके ही पीछे न हो तो भी कोई आपत्ति नहीं। पूरक, कुम्भक और रेचकके इन्हीं भेदोंको लेकर प्राणायामके अनेक प्रकार हो गये हैं।

साधकोपयोगी उपदेशामृत

[व्रजभाषामें]

(गोलोकवासी सन्त श्रीगयाप्रसादजी महाराज)

प्राप्त अवसरपै लाभ उठायवेकी युक्ति

भगवान्‌की पूर्ण कृपा है। याकौ पूरौ लाभ उठाऔ। या अवसरपै मत चूकौ। यह अवसर फिर नहीं आवैगौ। या अवसरसौं लाभ उठायवेके लिये व्रजवासमें दृढ़ निष्ठा (धामनिष्ठा), श्रीसद्‌गुरुमें श्रद्धा, समस्त संतनमें आदर-बुद्धि और श्रीभगवत्प्रीत्यर्थ निरन्तर भजन—ये चार बातें बन जानी चाहिये।

व्रजवासकी रहनी

व्रजवासकी सफलताके लिये रहनीकी बड़ी आवश्यकता है। यहाँकी रहनी है श्रीकृष्णके लिये ही जीनौ, उनके प्रेमकी प्राप्तिकी लालसा। न संसारकौ चिन्तन, न संसारकी चर्चा। सर्वथा प्रपंचशून्य, भजनपरायण गंभीर जीवन। स्वभावमें सरलता, विनम्रता, निरभिमानता, निरासक्ति, अक्रोध, सहनशीलता, सबके प्रति सेवा, सम्मान एवं प्रेम की भावना।

धीरे-धीरे मन, बुद्धि, चित्त, अहंकारकूँ श्रीभगवत्-प्रेममें लगा दें। मनसौं प्रेम-प्राप्तिके लिये सङ्कल्प, चित्तसौं श्रीभगवत्प्रेमकौ स्वरूप, श्रीभगवत् प्रेमीजन एवं परम प्रेमास्पद श्रीभगवान्‌कौ ही चिन्तन। बुद्धिकौ कार्य है निश्चय करनौ, अत: बुद्धिसौं श्रीभगवत्प्रेमके लिये ही दृढ़ निश्चय करनौ तथा अहंकारकूँ हू इनके सम्बन्धकी दृढ़तामें ही लगाय देनौ।

अस अभिमान जाइ जनि भोरे । मैं सेवक रघुपति पति मोरे॥

श्रीभगवत्प्रेमके अतिरिक्त अन्य कोई हू माँग न रहै। भगवान्‌सौं हू श्रीभगवत्प्रेम ही माँगै। मनकूँ सब ओरसौं हटायकैं खाली करनौ है। इनमें ही लगानौ है।

हमसौं जो सहायता चाहौ पूर्ण रूपसौं देवेको तैयार हैं। खुली छूट है। केवल पात्रता-लाभ कर लो। कोई सन्देह मत करो। पात्रता है महद् आश्रयपै पूरी श्रद्धा करकैं रहनी बनाते चलो। सारौ वानिक बनौ भयौ ही है।

सब कुछ भगवान्‌के लिये

भगवान्‌के लिये ही सब कुछ करें। इनसौं प्रेम हू करे इनके सुखके लिये ही। इनके प्रेममें डूबें। जैसी गोपीनकी स्थिति रही, वैसी ही बनायवेकी चेष्टा करें। याके लिये आवश्यक है संसारकी वासनासौं मन खाली करके इनमें लगावें।

लक्ष्य

दृढ़ लक्ष्य बने श्रीभगवत्प्रेम। जैसे किसान अपने खेतकी फसलकूँ सींचे हैं, वाकी रक्षा करे है, वाही प्रकार सत्सङ्गके द्वारा इनके प्रेमरूपी अंकुरकूँ सींचते रहैं और दिन-प्रति-दिन याकी रक्षा एवं वृद्धिकौ ध्यान राखै। संसारमें अनासक्त तथा विरोधरहित जीवन बितावें। या प्रकार याही जीवनमें श्रीभगवत्प्रेम प्राप्त कर लेउगे।

धैर्यपूर्वक मनको इनमें लगायवेकौ अभ्यास

लाखन जन्मनके कर्म संस्कारनके कारण मन इनमें शीघ्र नहीं लग पावै है। पूरी दृढ़तासौं अभ्यास करवेपै हू कुछ समय पश्चात् ही मन शान्त होय है। या विषयमें बड़े धैर्यसौं काम लैं।

आश्वासन

यदि पूरे प्रयत्नसौं इनकी ओर लगे रहे तौ बहुत कुछ मिलवे वारौ है। इतनौ कि सँभार नहीं सकोगे। पूर्णकौ काम है कि इनकी ओर जो चले है, ये वाकूँ पूर्ण बनायकैं ही छोड़े हैं। हाँ चलवेमें होय सत्यता।

संत एवं भगवान् एकत्व

संत और भगवान्‌में कोई अन्तर नहीं है। ये देखवेके लिये ही दो हैं। हैं दोनों एक ही।

आश्वासन

लगे रहो, कोई चिन्ता मत करो। साधनकौ फल अवश्य ही प्राप्त होयगौ। सर्वोच्च वस्तु प्राप्त करनी है, अत: कुछ समय तौ लगेगो ही।

साधनके साथ-साथ सदाचारकौ पालन बने। कहूँ आसक्ति, कोई लौकिक कामना तथा काहूसौं विरोध न रहे। [**संकलन—बाबा श्रीरामदासजी**]

'वृद्ध माता-पिताकी सेवासे बढ़कर कोई तीर्थ नहीं'

(श्रीअर्जुनलालजी बंसल)

विदेशी सभ्यताके आवरणमें हमारी प्राचीन संस्कृति और परम्पराएँ दिन-प्रतिदिन धूमिल होती जा रही हैं। हमारे शाश्वत प्रेमकी परिभाषा बदल गयी, आपसी व्यवहार बदल गया, खान-पान और रहन-सहन बदल गया, पारिवारिक सम्बन्धोंके अर्थ बदल गये, बोलचालकी शैली और पहनावा बदल गया, समाज स्वार्थी हो गया, साधु-सन्त सांसारिक हो गये, नदियाँ और सरोवर प्रदूषित हो गये, नहाने और पीनेके लिये सर्वथा स्वास्थ्यवर्धक स्वच्छ जलके स्रोतों—कुएँ और बावड़ियोंको हम बन्द करके बोतलबन्द पानीपर निर्भर हो गये, सागर अपनी सीमा लाँघने लगे, पर्वत स्वयं टूटकर गिर रहे हैं, पृथ्वीपर भूकम्प, आँधी और तूफानोंका वेग बढ़ गया।

जरा सोचिये, आज परिवार और समाजकी दुर्दशाके लिये दोषी कौन है? एक समय ऐसा भी था, जब परिवारके समस्त सदस्य संयुक्त परिवारके रूपमें एक सूत्रमें बँधकर रहते थे। घरका वरिष्ठ सदस्य हर छोटी-बड़ी समस्याका समाधान अपने परिजनोंके सहयोगसे ढूँढ़ लेता था। परिवारके किसी सदस्यको उत्पन्न समस्यासे अकेले ही सामना नहीं करना पड़ता था। आधुनिकताकी अन्धी दौड़में आज समाज अपनी प्राचीन संस्कृति और मर्यादाका उल्लंघन करनेमें तनिक भी संकोच नहीं करता। इस मानसिकताके परिणाम विनाशकारी सिद्ध हो रहे हैं। संयुक्त परिवार-प्रणाली अस्तित्वहीन होती जा रही है। हमारे ऋषि-मुनियोंद्वारा निर्धारित संस्कारोंके अभावमें संयुक्त परिवार एकल परिवारोंमें बदलते जा रहे हैं, परिणामस्वरूप आज प्रत्येक व्यक्ति अनेक समस्याओंमें उलझा रहता है।

वर्तमान समयमें परिवारोंमें क्लेश, मानसिक प्रताड़नाएँ, हिंसात्मक प्रवृत्ति, दहेज-लोभियोंका नीचतापूर्ण व्यवहार, नवविवाहिताओंसे मार-पीट, जलाकर मार डालनेकी घटनाएँ और तलाक आदिके समाचार प्रायः समाचार-पत्रोंमें पढ़नेको मिलते रहते हैं। यह संयुक्त परिवार बिखरनेका ही परिणाम है।

आज भी गिने-चुने परिवारोंमें माता-पिता और वृद्ध दादा-दादी साथ ही रहते हैं। उन परिवारोंमें संस्कारयुक्त धर्म और मर्यादाका विधिवत् पालन होता है, समस्त धार्मिक कार्य और त्यौहार परम्परागत रीतिसे मनाये जाते हैं। इसके विपरीत एकल परिवारोंमें ये त्यौहार मनाये ही नहीं जाते, यदि मनाते भी हैं तो अपने मनमाने ढंगसे शास्त्रोंकी मर्यादाके विरुद्ध दिखावेके लिये मनाते हैं, उन्हें यह भी पता नहीं होता कि यह त्यौहार हम किस उपलक्ष्यमें मना रहे हैं।

संयुक्त परिवार उस उपवन या उद्यानके समान होता है, जहाँ विभिन्न प्रकारके पुष्पित पौधे एकाकार होकर अपना सौन्दर्य और अपनी सुगन्ध फैलाकर सारे वातावरणको सुवासित रखते हैं। इसी प्रकार संयुक्त परिवारके सदस्य भिन्न-भिन्न विचारधाराओंके होते हुए भी अपने धर्म, संस्कृति और परम्पराओंका पालन करते हुए परिवारके श्रेष्ठजनोंकी छत्रछायामें ज्ञान और सत्कर्मोंकी सुगन्धसे सारे समाजको प्रसन्न रखते हैं। यह हमारे वैदिक कालकी आदर्श पारिवारिक व्यवस्थाका ही परिणाम है, जिसके आधारपर परिवारोंमें आपसी प्रेम बना रहता है।

परंतु दुर्भाग्यवश, कुछ अपवादोंको छोड़कर आज सारा समाज विपरीत दशामें जीवन-यापन कर रहा है। एकल परिवारवादके चलनसे हमारे पूजनीय माता-पिता और दादा-दादी वृद्धावस्था होते ही दुर्दशा और तिरस्कारके शिकार हो जाते हैं। इस त्रासदीका मुख्य कारण है, आधुनिकताका मुखौटा पहने पश्चिमी सभ्यतासे प्रभावित बहुत-सी नववधुएँ जब ससुरालमें प्रवेश करती हैं तब पतिको अपने वशमें कर वृद्धजनोंसे मुक्तिकी माँग करती हैं।

बस, इसी समयसे पुत्रोंके मनमें वृद्ध माता-पिताके प्रति सम्मान और अपनत्वका अभाव हो जाता है। पश्चिमी सभ्यतासे प्रभावित माताएँ विवाहोपरान्त पुत्रीको विदाई-सन्देश देते हुए कहती हैं, हे पुत्री, ससुरालमें तुम नौकरानी नहीं महारानी बनकर जा रही हो, स्वतन्त्र जीवन जीनेके लिये अलग घर बसाकर रहना। जरा

सोचिये, कन्या बहू बनकर पराये घरसे आती है, परंतु पुत्रोंको क्या हो गया, जिन माता-पिताने उन्हें जन्म दिया, पाल-पोषकर सर्व प्रकारसे समर्थ बनाया, उन्हीं माता-पिताको घोर अत्याचारोंसे पीड़ितकर दर-दरकी ठोकरें खाने घरसे निकाल देते हैं।

हमारे इसी देशमें एक समय ऐसा भी था, जब जनकपुरकी महारानी सुनयनाजीने विवाहोपरान्त अपनी चारों पुत्रियों सीता, उर्मिला, माण्डवी और श्रुतकीर्तिको विदाई सन्देश देते हुए कहा था—'हे पुत्रियो, ससुरालमें जाकर, ***सास ससुर गुर सेवा करेहू। पति रुख लखि आयसु अनुसरेहू॥***' इसके विपरीत आधुनिक माताओंद्वारा दी जा रही सीखके कितने घातक परिणाम निकल रहे हैं, ये किसीसे छिपे नहीं हैं।

प्रारम्भिक दिनोंमें नवविवाहित दम्पती अकेले घरमें रहकर ही अतिशय सुखका अनुभव करते हैं। अपने आवासमें स्वतन्त्रताका आभास, कहीं आने-जानेपर कोई रोक-टोक नहीं, अपनी मर्जीका खाना-पीना, अपने इच्छानुसार आधुनिक शैलीके कपड़े पहनना, परंतु यह आजादी मृगतृष्णाकी भाँति एक बार आकर्षित करके कुछ ही दिनोंमें भारी दु:खोंमें बदल जाती है। पति-पत्नीके आरम्भिक कुछ दिन हँसी-खुशीमें बीत जाते हैं। सन्तानका आगमन भी इस सुखमें वृद्धि करता है, परंतु वर्तमान जीवन-शैली इस सुखरूपी चन्द्रमाको ग्रहण लगा देती है।

हर परिवारमें दु:ख-दर्द भी आते रहते हैं, पति-पत्नीमें जाने-अनजाने छोटी-छोटी बातोंपर मनमुटाव भी हो जाता है, कभी-कभी कोई कारण ऐसा बन जाता है, जब साधारण-सा विवाद उग्ररूप धारण कर लेता है। घरमें कोई वरिष्ठ सदस्य नहीं, जो दोनोंकी पीड़ाको समझ प्यारसे-फटकारसे उसका निदान कर सके। ऐसे समय छोड़े हुए माता-पिताकी याद आती है; क्योंकि संयुक्त परिवार इन विषम हालातमें एक नियन्त्रककी भाँति अपनी भूमिका निभाता है, जिससे उस परिवारके हितमें सुखद परिणाम निकलते हैं।

एकल परिवारका कुप्रभाव सबसे अधिक सन्तानपर पड़ता है। उन्हें न तो दादा-दादीका स्नेहिल प्यार मिलता है, न ही सांसारिक बातोंका ज्ञान प्राप्त होता है। ऐसे वातावरणमें शिक्षाप्रद कहानियाँ सुननेसे भी वंचित रहना पड़ता है। बचपनमें जो संस्कार बच्चोंको दादा-दादीसे मिलते हैं, वे भविष्यमें उसके सुखी जीवनका स्रोत बन जाते हैं।

आजकी युवा पीढ़ी गहनतासे विचार करे कि परिवारके वृद्धजन उनके ऊपर अनावश्यक बोझ नहीं, अपितु समस्त परिजनोंको सुख और वैभवकी शीतल छाँवमें आश्रय देनेके लिये वटवृक्षकी भाँति सिद्ध होते हैं। अत: आजके तनावभरे माहौलमें यह आवश्यक हो गया है कि हम एकल परिवारकी कल्पना छोड़ पुन: संयुक्त परिवारमें जीवन-यापनका सुख भोगें।

बुढ़ापा—जीवनका एक मीठा फल

(श्रीमती कुशल गोगिया)

बुढ़ापा जीवनका एक परिपक्व एवं मीठा फल होता है। इसे बोझ नहीं समझना चाहिये। बुढ़ापेमें ज्ञानकी परिपक्वता, अनुभवकी मिठास, चिन्तनकी उपयोगिता और जीवन जीनेकी गहराई होती है। बुढ़ापेमें अगर क्रोध एवं अहंकारसे निजात पा ले तो स्वास्थ्य ठीक रहता है और व्यक्ति आनन्द एवं प्रेमसे सराबोर रहता है।

आत्मारूपी महलमें एक साथ सुमति एवं कुमतिका संगीत सुनायी देता है। कुमतिने आपके जीवनको दुखी बना दिया है; जबकि सुमति त्याग, वैराग्य एवं ज्ञान-ध्यानकी भावना जगाकर जीवनको सुखमय, प्रेममय एवं शान्तिमय बना देती है।

माता-पिता ही परम देवता हैं

(आचार्य डॉ० श्रीरामेश्वरप्रसादजी गुप्त, एम०ए०, पी-एच०डी०)

'भारतीय संस्कृति' शोभन संस्कारोंकी जननी है। मनुष्यमात्रको सही मानव बनानेका शिक्षण-प्रशिक्षण यहाँ प्रमुखतासे निदर्शित है। इसका मूल स्रोत 'वेद' है, जो 'मनुर्भव'का उद्घोषकर सही मानव बननेकी सीख देता है। यहाँ सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह-जैसे सद्गुणोंकी मान्यताके साथ विश्वबन्धुत्व तथा बड़ोंके प्रति परमसम्माननीय स्थान प्राप्त है। निर्दिष्ट है कि—

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम्॥

ऐसी ही मानवीय सद्वृत्तियाँ एवं सद् प्रेरणाएँ हमारी संस्कृतिका प्राण हैं। भारतीय संस्कृतिमें पारिवारिक सुव्यवस्था एवं सामाजिक अनुशासन-संरक्षणकी दृष्टिसे माता और पिताको श्रेष्ठ सम्माननीय स्थान प्राप्त है। उपनिषदोंमें माता और पिता परम देवताके रूपमें वर्णित हैं—

मातृदेवो भव पितृदेवो भव॥

(तैत्तिरीयोपनिषद् शीक्षावल्ली)

भक्त कवि गोस्वामी तुलसीदासने भी उपर्युक्त मान्यताको पुष्टि प्रदान करते हुए भारतीय संस्कृतिके इस शोभन भावको संरक्षण प्रदान किया तथा माता और पिताको समाजमें श्रेष्ठ पूज्य माननेकी मान्यताको परम सम्बल दिया। गोस्वामीजीने माता और पिताकी आज्ञाके पालनको प्रथम वरीयता देते हुए निर्देश दिया है—

मातु पिता गुर प्रभु कै बानी। बिनहिं बिचार करिअ सुभ जानी॥

(रा०च०मा० १।७७।३)

माता-पिताका सम्मान न करनेवाले व्यक्तिको गोस्वामीजीने निशाचरकी कोटिमें परिगणित किया है—

मानहिं मातु पिता नहिं देवा। साधुन्ह सन करवावहिं सेवा॥
जिन्ह के यह आचरन भवानी। ते जानेहु निसिचर सब प्रानी॥

(रा०च०मा० १।१८४।२-३)

'श्रीरामचरितमानस' महाकाव्य माता-पिताके सम्मानका अनुदेशक, उनकी आज्ञाके पालनका प्रदेशक तथा उनके हितानुबन्धिस्वभावका संदेशक है। कृतिमें श्रीरामकी श्रेष्ठताका प्रतिपादन उनकी मातृ-पितृ-भक्तिसे ही है—

प्रातकाल उठि कै रघुनाथा। मातु पिता गुरु नावहिं माथा॥

(रा०च०मा० १।२०५।७)

मानसमें सन्तानको प्रत्येक कर्म करनेसे पहले माता-पिताकी आज्ञा लेना आवश्यक कहा गया है। उल्लेख है—

आयसु मागि करहिं पुर काजा।

(रा०च०मा० १।२०५।८)

श्रीराम एवं उनके भाइयोंकी मातृ-पितृ-भक्ति उनके माता-पिताको सुखदायिनी होती है तथा अमित आशीष-प्रदायिनी भी। यथोल्लेख है—

बंदि बिप्र सुर गुर पितु माता। पाइ असीस मुदित सब भ्राता॥

(रा०च०मा० १।३५८।७)

श्रीरामचरितमानसमें वे माता-पिता ही सुकृती एवं धन्य कहे गये हैं, जिनकी सन्तानें सद्गुणी एवं सुकृती हैं—

सुकृती तुम्ह समान जग माहीं। भयउ न है कोउ होनेउ नाहीं।
तुम्ह ते अधिक पुण्य बड़ काकें। राजन राम सरिस सुत जाकें॥
बीर बिनीत धरम ब्रत धारी। गुन सागर बर बालक चारी॥

(रा०च०मा० १।२९४।५—७)

अन्यत्र भी उल्लेख है कि—

जनक सुकृत मूरति बैदेही। दसरथ सुकृत रामु धरें देही॥

(रा०च०मा० १।३१०।१)

श्रीरामचरितमानसमें वही संतति बड़भागी या सौभाग्ययुत कथित है, जो माता-पिताके वचनोंकी आज्ञाकारी तथा माता-पिताको तोष प्रदान करती है—

सुनु जननी सोइ सुतु बड़भागी। जो पितु मातु बचन अनुरागी॥
तनय मातु पितु तोषनिहारा। दुर्लभ जननि सकल संसारा॥

(रा०च०मा० २।४१।७-८)

भर्तृहरिने अपने नीतिशतक काव्यमें कहा है कि—

'यः प्रीण्येत् सुचरितैः पितरं स पुत्रः।'

(नीतिशतक ६५)

अर्थात् जो अपने अच्छे चरित्रोंसे पिताको प्रसन्न करता है, वही पुत्र कहलानेयोग्य है।

गोस्वामी तुलसीदासने भी अपने महाकाव्य श्रीरामचरितमानसमें उल्लेख किया है कि वे पुत्र-पुत्रियाँ धन्य हैं, जिनसे उनके माता और पिता सन्तुष्ट, प्रसन्न तथा प्रमुदित होते हैं। यथोल्लेख है कि—

धन्य जनमु जगतीतल तासू। पितहि प्रमोदु चरित सुनि जासू॥

(रा०च०मा० २।४६।१)

मानसमें माता और पिताकी भक्ति करनेवाली संततिको पुरुषार्थ-चतुष्टयकी उपलब्धिका सुपात्र कहा गया है। यथा—

चारि पदारथ करतल ताकें। प्रिय पितु मातु प्रान सम जाकें॥

(रा०च०मा० २। ४६। २)

श्रीरामचरितमानसमें माताका स्थान पितासे भी बढ़कर निर्दिष्ट है, अतएव माता परमसम्माननीया निरूपित है—

जौं केवल पितु आयसु ताता। तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता॥
जौं पितु मातु कहेहु बन जाना। तौ कानन सत अवध समाना॥

(रा०च०मा० २। ५६। १-२)

मानस महाकाव्यमें माता और पिताकी शिक्षाको ग्रहण करनेका एवं उनकी आज्ञाको पालन करनेका आवश्यक निर्देश है, जो मानव-जन्मकी सार्थकताको अभिव्यक्त करता है। यथा—

मातु पिता गुरु स्वामि सिख सिर धरि करहिं सुभायँ।
लहेउ लाभु तिन्ह जनम कर नतरु जनमु जग जायँ॥

(रा०च०मा० २। ७०)

मानसमें माता-पिताकी सेवा करनेका बार-बार निर्देश है। यथा श्रीराम लक्ष्मणसे कहते हैं—

अस जियँ जानि सुनहु सिख भाई। करहु मातु पितु पद सेवकाई॥

(रा०च०मा २। ७१। १)

श्रीरामचरितमानसमें माता और पिताकी आज्ञाके पालनमें उचित और अनुचितका विचार भी त्याज्य कहा गया है। एवमेव माता-पिताकी प्रत्येक आज्ञा संततिके लिये उनके सुखार्थ पालन करनेयोग्य कथित है। यथोल्लेख है—

अनुचित उचित बिचारु तजि जे पालहिं पितु बैन।
ते भाजन सुख सुजस के बसहिं अमरपति ऐन॥

(रा०च०मा० २। १७४)

माता-पिताकी आज्ञाका परिपालन मुदित मनसे करनेका उपदेश रामचरितमानसमें इस प्रकार है—

गुर पितु मातु स्वामि हित बानी। सुनि मन मुदित करिअ भलि जानी॥

(रा०च०मा २। १७७। ३)

श्रीरामचरितमानसमें श्रीरामकी श्रेष्ठताका प्रतिपादन एवं उन्हें अवतारी माननेका आधार उनके द्वारा प्रदर्शित उनकी मातृपितृभक्ति ही है। माता-पिताके प्रति समादर प्रकट करनेसे एवं उनकी आज्ञाके सम्यक् परिपालनसे ही श्रीराम यशस्विता-प्राप्त मान्य हुए। यथोक्त है कि—

गुर पितु मातु बचन अनुसारी। खल दलु दलन देव हितकारी॥

(रा०च०मा० २। २५४। ४)

श्रीरामचरितमानसमें माता-पिताकी आज्ञाका अनुपालन समस्त धर्मोंके सारके रूपमें निदर्शित है। यथा—

मातु पिता गुर स्वामि निदेसू। सकल धरम धरनीधर सेसू॥

(रा०च०मा० २। ३०६। २)

मानस (२। ३१५। ५)-में माता-पिताकी सीखका अनुपालन शिव एवं मंगलार्थ ही निर्दिष्ट है—

गुर पितु मातु स्वामि सिख पालें। चलेहुँ कुमग पग परहिं न खालें॥

अर्थात् गुरु, पिता, माता और स्वामीकी शिक्षा या आज्ञाका पालन करनेसे कुमार्गपर भी चलनेपर पैर गड्ढेमें नहीं पड़ता अर्थात् पतन नहीं होता।

इस प्रकार श्रीरामचरितमानसमें माता और पिता परम आदृत एवं श्रेष्ठरूपमें वर्णित हैं। उनके समान कोई वन्दनीय नहीं। वे देवतुल्य सेव्य और पूजनीय कहे गये हैं। उनका सम्मान करनेसे एवं उनके आज्ञानुपालनसे अक्षुण्ण आशीष, परमकल्याण, अपार सुख-शान्ति, सभी पुरुषार्थ तथा वांछित ऋद्धि-सिद्धियाँ सहज प्राप्त होती हैं। रामचरितमानसमें तद्गत वर्णनोंसे यह स्पष्ट ही होता है।

आज भारतीय मानव-समाज प्रायः पाश्चात्य सभ्यताके अनुकरणसे अपनी सात्त्विक संस्कृतिके सद्गुणोंसे दूर होता जा रहा है। इससे अवांछनीय भोगलिप्सा एवं मानसिक प्रदूषण प्रवर्धित होता जा रहा है।

तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु (यजुर्वेद ३४। १)

अर्थात् हमारा मन कल्याणकारी संकल्पवाला हो—यह शुभ भावना लुप्त होती जा रही है। इससे परिवारोंमें माता-पिता और बड़ोंके प्रति सम्मान तिरोहित-सा प्रतीत हो रहा है।

आइये, हम अपनी सदाशयतापूर्ण संस्कृतिके पुनः सम्यक् संस्थापनके लिये विनयपूर्वक सेवाभावसे शुभ आचरण करते हुए परम सम्माननीय माता-पिता और वृद्धजनोंको हृदयसे आदर-सम्मान प्रदानकर परिवार, समाज और राष्ट्रको शान्तिमय, सुखपूर्ण एवं समुन्नत बनानेमें सहयोग दें तथा श्रीरामके समान अपने जीवनको कृतार्थ करें, एवमेव 'मातृदेवो भव, पितृदेवो भव' के शुभमेव विचारको चरितार्थ करते हुए अनुकरणीय आदर्श प्रस्तुत करें।

संत-स्मरण

(परम पूज्य देवाचार्य श्रीराजेन्द्रदासजी महाराजके गीताभवन, ऋषिकेशमें हुए प्रवचनसे साभार)

❀ गुजरातके शहर धारंधरामें एक गृहस्थ सन्त हुए, जिन्हें लोग कड़िया भगतके नामसे जानते हैं। वे अत्यन्त सामान्य जीवन व्यतीत करते थे, किंतु हृदयसे पूरी तरह कामनाशून्य थे। पेशेसे टाइल इत्यादि लगानेके कारीगर थे। जहाँ काम करें, उसे बता दें कि इतने दिनका काम है। मुझे पूरी मजदूरी पहले दे दो। लोग उनपर विश्वास करते थे। वे पैसे लेकर मकानका किराया चुकाते, शेष रकमका राशन-पानी लेकर घर जाते।

काम पूरा करके जबतक भोजनकी व्यवस्था रहे तबतक भजन करें, पुनः कामपर तभी निकलें, जब राशन समाप्त हो जाय। एक बार किसीने कहा, 'वृन्दावन चलो, हम टिकट करा देंगे।' उन्होंने स्वीकार नहीं किया और कहा—मुझे कोई अभाव नहीं है, पर कहीं जाने-आनेकी चाह भी नहीं है। कालक्रमसे उन्हें टी०बी० की बीमारी हो गयी। लोगोंने कहा हम इलाज करा दें, वे किसीके पैसेसे इलाज करानेको तैयार नहीं हुए। एक सेठ नहीं माने और वाहन लेकर उन्हें इलाजहेतु ले जानेको तत्पर हुए। उन्होंने स्नान किया और तुलसीके गमलेके पास बैठ गये। जेबमें एक मंजीरा रखते थे। उसे निकालकर बजाने लगे और कीर्तन करते-करते परमधामको चले गये। साधुओंने उनका भण्डारा-उत्सव किया, गोविन्द-दासजीने भागवत-कथा कही। यह निरपेक्ष भावकी महिमा है।

❀ उड़ीसाके जगन्नाथप्रभुके पंचसखाओंमें एक थे भोले भगत। वे मन्दिरमें गायन कर रहे थे और नृत्य-सेवा चल रही थी। प्रारब्धवश नर्तकीके प्रति उनके मनमें आकर्षण हुआ और कालक्रमसे उनका परस्पर स्नेहभाव बढ़ता गया। आषाढ़ प्रतिपदाकी रात्रिको दुर्भाग्यवश वे नर्तकीके आवासपर रहे। प्रातः उत्सवका माहौल देखकर पूछा कि क्या कारण है। जब पता चला कि रथयात्राकी तैयारी है, तब प्रेमावेगमें उन्हीं कपड़ोंमें भागते हुए गये और रथपर चढ़ने लगे। तबतक लोगोंमें परिवाद फैल चुका था, अतः उनकी खूब पिटायी हुई। बेहोश होकर गिर गये। होश आया तब समुद्र-किनारे पहुँच गये और अपनी करनीका पश्चात्ताप किया। कहा ठीक है, करनीका दण्ड मिल गया। वहीं बालूके तीन पिण्ड बनाये और उनमें जगन्नाथ-बलभद्र-सुभद्राकी भावना करके उन्हें मानसी-रथमें आरूढ़ कराया। भावदशामें लीन हो गये। वहाँ सारी तैयारीके बाद अनेक प्रयत्न करनेपर भी भगवान् जगन्नाथका रथ हिले नहीं। राजाने प्रार्थना की तब आकाशमें ध्वनि सुनायी दी कि मेरा सखा बलराम समुद्रतटपर मेरा दर्शन कर रहा है। उसका रथ आगे बढ़ेगा, तभी यह रथ चलेगा। लोग समुद्रतटपर भागे, देखा भगत भाव-समाधिमें लीन हैं। उन्हें जगाया, क्षमा माँगी, पालकीमें रथतक लाये और जगन्नाथ-प्रभुका रथ चल पड़ा। यह निश्छल प्रेमकी महिमा है।

❀ सौराष्ट्रके सन्त प्रेमभिक्षुजी महाराज बड़े भावनिष्ठ संकीर्तनप्रेमी थे। आज भी कई स्थानोंपर उनके द्वारा प्रारम्भ किये अखण्ड-नाम-संकीर्तन चल रहे हैं। वे १८ घंटेतक स्वयं संकीर्तनमें भाव-विभोर हो जाते थे, उनकी आँखोंसे झर-झर आँसू बहने लगते, रोमांचमें उनके सिरके बाल भी खड़े हो जाते। उन्हें कभी-कभी बीचमें लिटाना भी पड़ जाता था। ऐसी अवस्थामें डॉक्टरोंने परीक्षण करके आश्चर्य व्यक्त किया कि मानव-शरीरमें इतना ताप होने और उसमेंसे इतना जल निकल जानेपर वैज्ञानिक दृष्टिसे उसे जीवित नहीं रहना चाहिये। एक बार जामनगरमें ऐसी ही भावदशामें आ गये तब तीन दिन बाद होश आनेपर कहा कि अब यदि शरीर भगवत्सेवाके योग्य नहीं रहा तो इस शरीरको छोड़ देंगे। यह भी कहा कि शरीरको मेरी विनय-पत्रिकाकी पुस्तकके साथ गोमती-सागर-संगममें प्रवाहित कर देना। ऐसा कहकर वे भावदशामें चले गये। लोगोंने समझा कि परमधाम चले गये। तीन दिन बाद शरीरको द्वारका लाया जा सका। वहाँ शरीर-प्रवाहके पहले संकीर्तन हुआ, तब उनके नेत्र अचानक खुल गये। द्वारकाधीशकी ध्वजाका दर्शन करके वे परमधामको गये।—'**प्रेम**'

सुख-दुःखकी तहमें

(ब्रह्मचारी श्रीत्र्यम्बकेश्वरचैतन्यजी महाराज, अखिल भारतवर्षीय धर्मसंघ)

सारी दुनियाके प्राणियोंके देश भिन्न हो सकते हैं। जातियाँ, मान्यताएँ, उपासना-पद्धतियाँ, भाषाएँ, व्यवहार, खान-पान भिन्न हो सकते हैं। उपास्य, आराध्य, पन्थ, सन्त, ग्रन्थ भिन्न हो सकते हैं, परंतु सुख पानेकी ललक तथा दुःखसे बचनेकी इच्छा सर्वत्र समानरूपसे पायी जाती है। संसारके कुछ चुनिन्दा समझदार लोगोंको छोड़कर अधिकांश पठित-अपठित लोगोंने दुःखको बुरा तथा सुखको अच्छा कहा है। इसकी वास्तविकताको जाननेसे पहले प्रत्येक व्यक्ति इसी भ्रमका शिकार रहता है। शायद आप भी कुछ ऐसा ही समझते होंगे, प्रतिकूलतामें अधिक निखार आता है। हिना जितनी अधिक घिसी जायगी, उतनी अधिक रोचकता देगी। स्वर्ण जितना तपाया जायगा, उतना ही अधिक विशुद्ध होगा। वैसे ही धैर्यशाली प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति जितना संघर्षोंमें फँसता है, उतना ही चट्टानी इरादोंके साथ शक्तिशाली और समाजोपयोगी स्वरूप धारण करता है। पहले ये जान लें कि संसार साधारणतया सुख-दुःखकी परिभाषा क्या करता है—'**प्रतिकूलवेदनीयं दुःखम्, अनुकूलवेदनीयं सुखम्**' जो हमारे मनको अनुकूल लगे, वह सुख कहलाता है और जो प्रतिकूल (विपरीत) प्रतीत हो, वह दुःख कहलाता है। विचार करें तो एक वस्तु (व्यक्ति-स्थान-समय-साधन) हमेशा न तो हमारे लिये अनुकूल हो सकता है, न प्रतिकूल ही। इसका मतलब सुख-दुःख वस्तुतः कुछ भी नहीं, मात्र हमारी मिथ्या धारणाएँ ही हैं, जिन्हें हम सुख-दुःखका नाम देते हैं।

आप स्वयं सोचें कूलर हमें गर्मीमें सुख देता है, परंतु वही कूलर सर्दीमें भार क्यों लगता है? हीटर जनवरीमें सुख देता है, परंतु जूनमें? मीठा साधारणतया अच्छा लगता है, परंतु अन्तिम स्थितिमें पहुँचे शुगर रोगीको मीठा कैसा लगेगा? कोई खाकर खुश है, कोई बिना खाये। कोई वस्त्र पहनकर खुश है, कोई दिगम्बर। कोई अकेलेपन, एकान्त-शान्त वातावरणमें खुश है तो कोई भीड़-भाड़में—मेलेमें खुश है। एकान्तवासीको बाजार, मेला दुःख देता है, भीड़में खुश होनेवालेसे कहो कि एकान्त नदी-किनारे चलें तो कहेगा वहाँ मन नहीं लगता, मैं एकान्तसे डरता हूँ।

हमारे मनके द्वारा गढ़ी गयी परिभाषाका नाम सुख-दुःख है, क्योंकि इनकी स्थायी सत्ता है ही नहीं। हम एक भ्रममें जीनेके आदी हो चुके हैं। महाराणाके जीवनमें दुःख था सुख नहीं था, परंतु राणा आज भी जीवित हैं, प्रासंगिक हैं। महल छोड़कर पेड़के नीचे

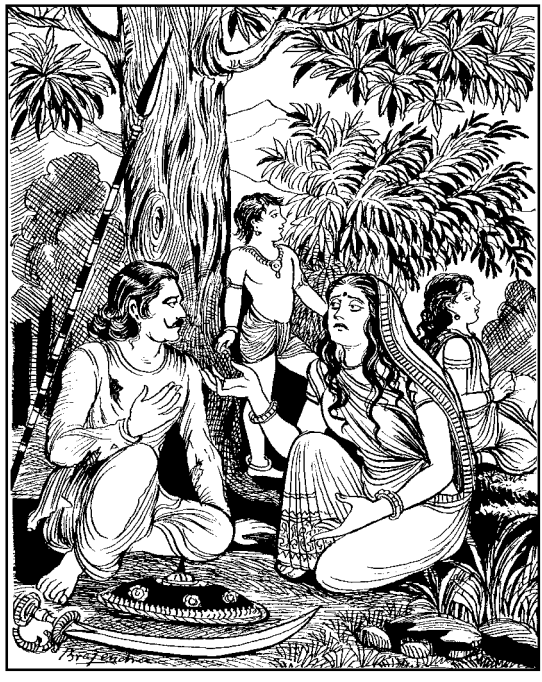

वनमें रहना, भोजनके अभावमें भूखसे बिलखते बच्चोंको घासकी रोटी देना, उस रोटीको भी बिल्लीका ले जाना। उफ! आप ही सोचें कि क्या स्थिति रही होगी? रानी लक्ष्मीबाई, मीराबाई, रैदास, कबीर, सूर, तुलसी महाराज, नल, पाण्डव, सुभाषचन्द्र बोस, चन्द्रशेखर आजाद, भगत सिंह, गुरु गोविन्द सिंह, शिवाजी, स्वामी करपात्रीजी महाराज प्रभृति महापुरुष प्रतिकूलताओंका सामना करके ही सिद्धि-प्रसिद्धिको पा सके। माता कुन्तीने तो भगवान् कृष्णसे दुःख ही माँगा था—

विपदः सन्तु नः शश्वत्....।

दुःख देना अतिशय हरि मुझको। याद रखूँ जिससे मैं तुझको॥

कोई सन्त कहते हैं—

सुख के माथे सिल परे, जो हरि को विसराय।
बलिहारी या दुःख की, जो पल पल नाम रटाय॥
दुःख में सुमरन सब करै, सुख में करे न कोय।
जो सुख में सुमरन करै, तो दुःख काहे को होय॥

न कोई विपत्ति है, न सम्पत्ति, अपितु भगवान्‌को भूल जाना ही विपत्ति है, उनकी स्मृति ही सम्पत्ति है।

विपदो नैव विपदः सम्पदो नैव सम्पदः।
विपद् विस्मरणं विष्णोः सम्पन्नारायणस्मृतिः॥

श्रीहनुमान्‌जी महाराज भी कहते हैं—

कह हनुमंत बिपति प्रभु सोई। जब तव सुमिरन भजन न होई॥

परंतु इन सबसे अलग विचार यह है कि जीव जब जन्म लेकर संसार-यात्रापर चलता है, तब परमात्मारूपी पिता उसके निर्वाहके लिये प्रारब्धरूपी पाप-पुण्यात्मक पोटली देता है। ध्यान रखना, संसारमें जो भी कुछ हमें मिलता है, उसकी कीमत हमें चुकानी पड़ती है। जब हमारे जीवनमें सुख-सम्मान-सम्पत्ति-यश आदि आते हैं, तब हमारी पुण्यकी पोटली कम होती है और जब दुःख, दरिद्रता, दीनता, पराजय, रोग आदि आते हैं, तब हमारे पापोंकी पोटली खाली होती जाती है।

सुखं क्षयाय पुण्यस्य दुःखं पापस्य मारिष।
तस्मात् सुखक्षये हर्षः कर्तव्यः सर्वथा बुधैः॥

(श्रीमद्देवीभा० ५।४।४९)

अब आप ही विचार करें कि हमें अपने पुण्यके नष्ट होनेपर खुश होना चाहिये? हम नादानीवश पापके घटनेपर (दुःखोंके आनेपर) भगवान्‌को दोष देते हैं तथा पुण्यके घटनेपर (सुखोंके आनेपर) मुसकराते, खुशियाँ मनाते लापरवाहीमें जीते हैं। दुःखको पचाना (सहन करना) कठिन होता है, परंतु सुखको पचाना अत्यधिक कठिन होता है। दुःख हमारी प्रगतिमें बाधक हो सकता है, परंतु सुख हमारी प्रगतिमें महाबाधक होता है। जैसे कि कोई व्यक्ति गंगाजल लेकर हरिद्वारसे दिल्लीके लिये चला। रास्तेमें पैर सूज गये अथवा छाले पड़ गये अथवा चोट लग गयी तो वह दवा लेकर पट्टी कराकर, कराहता जायगा। शिवस्मरण करता जायगा, बढ़ता जायगा मंजिलकी ओर, किंतु यदि मार्गमें अच्छी सुविधावाला शिविर मिला, अच्छा भोजन, सेवा तथा एसी, कूलरकी सुन्दर व्यवस्था हो, बार-बार अधिक खानेको आग्रह हो और व्यक्ति अधिक खाकर सो जाय और जब नींद खुले तब सूर्यास्त हो चुका हो, अब आप स्वयं सोचें कि हमारे लक्ष्यकी प्राप्तिमें सुख अधिक बाधक या दुःख?

दुःख तो केवल हमारे धैर्यकी परीक्षा लेनेके लिये आता है। एक चिन्तकने कहा है कि यदि आपको उन्नति करनी है, (चाहे भौतिक उन्नति अथवा आध्यात्मिक उन्नति) तो जो व्यक्ति, वस्तु, स्थान आपके मनको अच्छा लगता है, उससे तुरन्त दूरी बना लीजिये। ध्यान रखना ये एकदम दुनियासे विपरीत सिद्धान्त है। प्रथम दृष्टिमें अजीब, कड़वा, बकवास लगेगा, परंतु जितना ध्यानसे सोचोगे, आपको लगेगा कि यही तो वह सच है, जिससे व्यक्ति अच्छा होना तथा अच्छा लगनेका अन्तर समझ सकता है। स्वयंको थोड़ा ध्यानसे पढ़ो। अपने मनको, अपनी इच्छाओंको थोड़ा समझो। पीछे बीती जिन्दगीपर थोड़ा सजगतासे दृष्टिपात करो। एक बात स्पष्ट हो रही है कि जब-जहाँ-जिससे हमें अनुकूलता मिली, मनको प्रसन्नता मिली, हमें समयका ज्ञान नहीं रहा। हमारा समय न जाने कब, कहाँ, कैसे बीता; पतातक न चला। जैसे किसी प्रियसे मिलनके समय अथवा फिल्म देखते समय तीन घंटे कब बीत जाते हैं, पता ही नहीं चलता, उससे अलग होते ही आपको आवश्यक कार्य याद आते हैं, आप हड़बड़ाते हैं, अफसोस जताते हैं, ओह! मैं जान ही न पाया समय कब बीता!

सुख के युग पल-सम लगते हैं। दुःख के पल पल युग बन जाते॥
जाग सच्चाई देख रे मानव। जीवन के दिन निकले जाते॥

इस प्रकार अनुकूलता मिलते ही व्यर्थ सुखकी कल्पना-स्वाद चखनेवाला व्यक्ति अपने दायित्वको, कर्तव्यको, महत्त्वपूर्ण कार्यको भूलकर भ्रममें समय गँवाकर पीछे पछताता है। व्यक्ति लौकिक व्यवहारको बहुत समय दे नहीं पाता, अपने मनको खुश कर नहीं पाता और बहुत अधिक लोक-व्यवहार निभानेवाला अथवा अपने मनको ही खुश रखनेकी सोचनेवाला व्यक्ति कभी समुन्नतिके शिखरको छू नहीं पाता।

दूसरा पक्ष भी है, जब कभी भी तिरस्कार, उपेक्षा, अपमान हुआ होगा, आपकी गति तीव्र हो गयी होगी।

जब एक रास्ता विरोधियोंने रोका होगा, तब आपका विवेक दूसरे रास्ते खोजने लगा होगा। सम्मान हमको आगे बढ़ने नहीं देता। अपमान ठहरने नहीं देता। माला पहनानेवाले, मुसकराकर बात करनेवाले, प्रशंसा करनेवाले आपकी गति-प्रगतिको प्रभावित करते हैं।

अब अन्तमें इस लेखके उद्देश्यपर दृष्टिपात करें। खुदसे पूछें कि इसको पढ़नेके बाद क्या समझ सके? सुख, सम्मान, प्रशंसा, लाभ, माला, नमस्कारका क्या मतलब है तथा दुःख, अपमान, निन्दा, हानि आदिका क्या मतलब है? इन दोनोंके विषयमें अधिक सोचना, व्यर्थ समय गँवाना है। अच्छा है, निरन्तर आगे बढ़ा जाय। ये सुखादि हमारा लक्ष्य नहीं हैं, अपितु हमारा लक्ष्य तो सुख-दुःखसे ऊपर उठकर आनन्दके साम्राज्यमें प्रवेश करना है, जहाँ सुख या दुःखकी पहुँच ही नहीं है। सम्मान-अपमान तो शरीरका होता है, चेतनाका नहीं। सुख-दुःख मनको होते हैं, आत्माको नहीं। तब व्यर्थ क्यों इनके पचड़ेमें पड़कर आनन्दको खोयें? भला, कौन है इस दुनियामें जिसे इनका सामना न करना पड़ा हो, परंतु प्रबुद्ध, जागरूक मानव आनन्दावस्थामें जीता है। जब कभी भारी दुःख हो, अँधेरा घना हो, प्रकाश या समाधानकी सम्भावना भी दिखायी न देती हो, एकके बाद एक विपत्तियोंपर विपत्तियाँ आती जा रही हों, तब एक बात हमेशा याद रहे कि तुम खुदसे कहो—अरे मन! वे दिन नहीं रहे तो ये दिन भी नहीं रहेंगे। क्या हमेशा रात रह सकती है? प्रभात होनेमें भले ही देर हो; परंतु होगा अवश्य, घबरा मत। दुःख बिना बुलाये मेहमान-जैसा है, भगानेसे भागनेवाला नहीं है, वैसे ही सुख भी बिना बुलाये आयेंगे; बस, प्रतीक्षा करो। धूप-छाँवकी भाँति इनका आना-जाना है। '**आगमापायिनोऽनित्याः तान् तितिक्षस्व भारत॥**' ये आने-जानेवाले हैं, इनको सहन कर लो। नीतिकार कहते हैं—

यथा चतुर्भिः कनकं परीक्ष्यते
निघर्षणच्छेदनतापताडनैः ।
तथा चतुर्भिः पुरुषं परीक्ष्यते
श्रुतेन शीलेन कुलेन कर्मणा॥

जैसे स्वर्णकार स्वर्णकी परख करनेके लिये चार रास्ते (विधियाँ) चुनता है—१. कसौटीपर घिसकर देखता है, २. काटकर देखता है, ३. जलाकर देखता है एवं ४. पीटकर देखता है। ठीक, वैसे ही श्रेष्ठ मनुष्यको परखनेके लिये प्रकृतिकी प्रयोगशालामें चार विधियाँ अपनायी जाती हैं। पूर्वमें भी ये ही उपाय थे, आज भी ये ही उपाय हैं, आगे भी ये ही रहेंगे।

बालकोंके लिये सात कर्तव्य

(श्रीलक्ष्मीनारायणजी मूँधड़ा)

(१)

नित्य सवेरे जल्दी उठकर, धरती माँको करो प्रणाम।
बासी मुँह जल पीना बच्चों, सबसे पहला है यह काम॥

(२)

मंजन और शौचसे आकर, करो नित्य थोड़ा व्यायाम।
उसके बाद नहा करके फिर, सभी बड़ोंको करो प्रणाम॥

(३)

सूरजको जलधारा देना, इसको भी तुम भूलो मत।
सब कुछ सूरजसे ही मिलता, लेता नहीं कोई कीमत॥

(४)

भोजन करने बैठो, तब तुम, टी०वी०, मोबाइल कर दो बन्द।
जूठ छोड़ना झूठ बोलना, इसकी तुम खालो सौगन्ध॥

(५)

भोजनमें मत कमी निकालो, ठूँस-ठूँसकर मत खाना।
सदा प्रेमसे बोलो सबसे, कभी नहीं तुम घबराना॥

(६)

फोन किसीका आये तब तुम, कभी नहीं 'हैलो' कहना।
राम-राम या जय श्रीकृष्ण, कहकर बात शुरू करना॥

(७)

ये सब बातें याद रखोगे, अच्छा नाम कमाओगे।
दिन दूनी और रात चौगुनी, उन्नति करते जाओगे॥

संत-वचनामृत

(वृन्दावनके गोलोकवासी सन्त पूज्य श्रीगणेशदासजी भक्तमालीके उपदेशपरक पत्रोंसे)

❀ श्रीदशरथजीके मरनेपर जब उनकी अन्त्येष्टि क्रिया हो रही थी, उस समय तीनों लोकोंके महान्-से-महान् ऋषि-महर्षि उपस्थित थे। तीनों माताएँ सतीकालिक शृंगार करके आयीं और चिताकी ओर बढ़ रही थीं। उपस्थित ऋषिसमूह सती हो जाना ही ठीक समझ रहा था। इसी बीच श्रीभरतलालजीने उन माताओंके श्रीचरणोंमें प्रणाम किया। श्रीतुलसीदासने लिखा है कि—

गहि पद भरत मातु सब राखी। रहीं रानि दरसन अभिलाषी॥

(रा०च०मा २। १७०। २)

उक्त वाक्यमें ध्वनि यह है कि श्रीभरतजीने माताओंको प्रणाम करके उन्हें समझाया कि पतिके साथ सती होना सामान्य धर्म है। शरीरको रखकर श्रीरामका दर्शन करना परम धर्म है। परम धर्मसे भक्ति होती है। भक्ति करनेसे, परमधर्मका आचरण करनेसे सामान्य धर्मके त्यागका दोष नहीं लगता है। सामान्य धर्म पालन हुआ माना जाता है, सौके नोटमें पचास, बीस, दस, पाँच आदिके नोट समाये रहते हैं। सौके नोटको प्राप्त करनेमें यदि पाँचका नोट छूट जाय तो हानि नहीं मानी जायगी। पाँचका नोट सामान्य धर्म है और सौका नोट भक्तिका आचरण है। सती होनेमें साधारण लाभ है। रामदर्शनमें परम लाभ है। अत: अब वनमें चलकर रामदर्शन होगा, आगे श्रीरामके वनसे वापस आनेपर अधिक समयतक उनके दर्शनका लाभ होगा। यह सोचकर माताएँ वापस रनिवासको चली गयीं।

उन दिनों कोई स्त्री विधवा नहीं होती थी। सती हो जाती थी। विधवा स्त्री जीवित नहीं रहती थी, परंतु रामदर्शनार्थ माताएँ जीवित रहीं। इसका समर्थन ऋषिसमूहने किया। माताओंने श्रीरामसे प्रार्थना की थी कि—

जे दिन गए तुमहि बिनु देखे। ते बिरंचि जनि पारहिं लेखे॥

हे श्रीराम! जो दिन तुम्हारे दर्शनोंके बिना बीते, उनकी गिनती जीवनमें न हो। दर्शनयुक्त जीवन ही जीवन है। भक्ति बिना जीवन जीवन नहीं है। श्रीरामके जन्मसे पूर्वका समय आयुमें नहीं गिना गया। जन्मके बादसे जितनी आयु उस युगमें होनी चाहिये, उतनी आयु माताओंने प्राप्त की। दस हजार वर्षकी आयु उन दिनों हुआ करती थी। दर्शनहीन जीवन लेखेमें नहीं आया। अत: माताएँ अधिक दिन जीवित रहीं। श्रीरामजीके साथ परमधाम गयीं।

❀ इस जगत्के विषयोंके सुख तो बिना प्रयासके उसी तरह मिलते हैं, जैसे बिना प्रयत्नके दु:ख मिलता है। अत: मनसे उसे पानेकी इच्छा नहीं करनी चाहिये। मनसे सदा भगवान्के नाम, रूप, चिन्तन, स्मरणकी कामना करनी चाहिये। भगवान्का सेवक कदाचित् संसारी कर्म करनेवालेके समान जगत्में पड़ा दिखायी पड़े तो भी वह आवागमनके चक्रमें नहीं पड़ेगा। उसे सन्त-भगवन्तका अनुग्रह प्राप्त होगा। वह संसारमें गिरनेसे बच जायगा, गिरकर भी निकल जायगा। जो भगवान्की लीलाके अतिरिक्त संसारका चिन्तन-स्मरण करते हैं, अन्य धर्मोंका आचरण करते हैं; उनकी बुद्धि स्थिर नहीं हो पाती है। वायुके वेगसे नावकी चंचलताकी तरह अस्थिर बुद्धि शान्तिका अनुभव नहीं करती है, अत: भगवान्का आश्रय लेकर वैष्णव धर्मका ही आचरण करना चाहिये। श्रीराधारानी वैष्णव धर्मपथपर चलनेकी शक्ति प्रदान करें। यही प्रार्थना करनी चाहिये। श्रीराधे-राधे।

❀ भगवान् जब नेत्रोंके सामने आते हैं, तब श्रीकृष्ण अपने भक्तके नेत्र, नासिका आदिके सामने अपने सौन्दर्य, सुगन्ध, सुकुमारता, उदारता, करुणा आदि गुणोंको प्रकट कर देते हैं। भक्त उनका जितना-जितना आस्वादन करता है, उतना ही आस्वादनकी उत्कण्ठा बढ़ती जाती है। उनके हृदयमें परमानन्दका सागर लहराने लगता है। वह स्वयं कृतार्थ हो जाता है। उसके दर्शन-स्पर्शसे अन्य जीव भी कृतार्थ हो जाते हैं। भगवान् ऐसी कृपा करें कि हम सत्य-क्षमाका आश्रय लेकर साधन-भजनपरायण हो जायँ।

['परमार्थ के पत्र-पुष्प' से साभार]

श्रीसमर्थ-शिष्या वेणाबाई (वेणास्वामी)

(सौ० मधुवन्ती मकरन्द मराठे)

'जय जय रघुवीर समर्थ' कहते हुए श्रीसमर्थ सद्गुरु रामदास स्वामीने एक समय मिरजके एक घरमें प्रवेश किया। सामने देखा तो तुलसी-वृन्दावनके पास एक तरुणी कुछ ग्रन्थ पढ़ती हुई दिखायी पड़ी।

समर्थने उसे देखा तो उनके मनको धक्का-सा लगा; क्योंकि वह सुन्दर गौरवर्णा तरुणी, जिसके मुखमण्डलकी शोभा बढ़ानेवाला कुंकुमतिलक नहीं था, ऐसी सफेद कपालवाली बालविधवा थी।

'बहुत लम्बा जीवन इसे ऐसे वैधव्यको प्राप्तकर अकेले ही बिताना है, यदि इसे सत्संग मिले तो इसका जीवन सार्थक हो जायगा।'

ऐसा विचार मनमें उठते ही श्रीसमर्थ सद्गुरुने उससे पितृवात्सल्यसे भरी वाणीमें पूछा—'बेटी! क्या नाम है तुम्हारा? और यह कौन-सा ग्रन्थ पढ़ रही हो?' 'महाराज! मेरा नाम वेणाबाई है और मैं यह एकनाथ महाराजकी एकनाथी भागवत पढ़ रही हूँ।' श्रीसमर्थ बोले—'ग्रन्थ तो अच्छा ढूँढ़ा है, परंतु उसमें कथित भागवतधर्म समझा?' वेणाबाई बोली—'महाराज! मैं बेचारी क्या समझ सकूँ। और समझायेगा भी कौन? मैं तो खाली इसे पढ़ रही हूँ।'

समर्थ बोले—'बेटी! ऐसी स्थिति होगी तो क्या लाभ पढ़नेसे?' साधककी तैयारी पूरी होनेपर सद्गुरु अपने-आप प्राप्त होते हैं—ऐसा सोचकर समर्थ सद्गुरु वहाँसे चले गये।

इसके बाद वेणाबाई अपने उपाध्यायजीके पास गयीं, जो उनके घर भगवान्‌की पूजाके लिये नित्य आया करते थे और उनसे सारी घटनाका वर्णन करके सुना दिया। वे बोले—'एकनाथी भागवतमें वर्णित भागवत धर्म कौन-सा है, यह मैं भी नहीं बता सकता। शायद जो सत्पुरुष तुम्हें मिले और यह पूछ रहे थे, वे ही इसका ठीक-ठीक अर्थ तुम्हें समझा सकेंगे। मैंने तो तुम्हें यह एक अच्छा उत्कृष्ट ग्रन्थ है, इसीलिये पढ़नेको कहा था।' वेणाबाई घर लौट आयीं और श्रीसद्गुरु समर्थ रामदास स्वामी महाराजकी चातक पक्षी-जैसी राह देखने लगीं। ग्रन्थ पढ़तीं, पर मन तो सारा-का-सारा समर्थ कब मिलेंगे—इसीमें लगा रहता था। कुछ दिनोंके बाद समर्थ स्वामीके फिर उस तरफ लौटनेपर वेणाबाईने उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया और पिताके साथ उनकी पूजा करके दोनोंने दीक्षानुग्रह लिया।

वेणाबाईपर विषप्रयोग—रात-दिन श्रीसमर्थ सद्गुरु रामदास स्वामीजीके निदिध्यासनमें लगे रहनेसे वेणाबाई पगला गयीं। साधककी अनन्य निष्ठासे युक्त आचरण अथवा एकांगी व्यवहार इस संसारमें पागलपन ही समझा जाता है। श्रीसमर्थ सद्गुरु रामदास स्वामीजीका कीर्तन सुननेके लिये वे जाती थीं। यह उनके माता-पिताके घर मान्य था, पर व्यावहारिक जगत्‌को यह मान्य नहीं था। जैसे अँधेरेमें मनुष्य ठोकर लगनेसे दुखी होता है, वैसे ही अत्यन्त प्रकाशमें भी आँखें चौंधियानेसे ठोकर लगनेसे दुखी होता है। व्यवहारमेंसे (प्रपंचमेंसे) अलग होकर परमार्थमें प्रवेश करनेपर लोकनिन्दाके आघात सहने ही पड़ते हैं।

कुछ दिनों बाद 'समर्थ सद्गुरुका कीर्तन कोल्हापुरमें श्रीअम्बाबाई करवीरनिवासिनी श्रीमहालक्ष्मीजीके मन्दिरमें हो रहा है', यह सुननेपर वे तुरन्त कोल्हापुर नगरमें पहुँच गयीं। उनका ससुरालका घर वहींपर था। श्रीसमर्थके कीर्तन वेणाबाई तल्लीन होकर सुनतीं। श्रीसद्गुरु समर्थ स्वामीसे सम्भाषण करतीं। ऐसा रोज होता था।

एक दिन उन्होंने श्रीसमर्थसे उनके साथ जानेका अपना विचार प्रकट किया। श्रीसमर्थ बोले—'अभी मत आना, हम वनोंमें, अरण्योंमें घूमनेवाले लोग हैं। हमारे साथ आनेसे फायदा कुछ नहीं, जननिन्दा ही सहनी

पड़ेगी।' वेणाबाई बोलीं—'मुझे लोगोंसे क्या लेना-देना है? उलटे मेरे उद्धारका मार्ग उनके पास नहीं। मनसे विशुद्ध होनेपर भी मेरी जननिन्दा तो हो ही रही है न?' समर्थ बोले—'वह सब सच होनेपर भी इन्हीं लोगोंमें आपको रहना है, तब उनसे इस प्रकार बर्ताव रखना, अलग रहना ठीक नहीं है। 'पंचमुखी परमेश्वर' इस न्यायसे उन सबका सम्मान करना चाहिये। प्रभु श्रीरामजीने भी जननिन्दाके कारण सीतामाताको अपनेसे दूर रखा था न? लोगोंका मन दुखाकर आप हमारे साथ मत आइये।'

वेणाबाई इसपर बोलीं—'आप अपने साथ मुझे नहीं ले जायँगे तो मैं प्राण त्याग दूँगी। यह बात निश्चित है; क्योंकि यदि एक भी बात मनके मुताबिक नहीं हो रही हो तो ऐसा निरर्थक जीवन जीनेसे तो मरना ही भला है।'

इसपर श्रीसमर्थ सद्गुरुने वेणाबाईको समझा-बुझाकर उनका मन शान्त किया और उचित समय आनेपर हम तुम्हें आकर ले जायँगे—ऐसा कहा।

वेणाबाईका यह सम्भाषण बुरे निन्दकोंने सुन लिया और उनके सास-ससुरके कान भरे। सास-ससुरने बिना कुछ पूछताछ किये और बिना कुछ कहे-सुने उन्हें घरसे उनके मायके भिरज भेज दिया।

'वेणाबाई अपनी ससुराल गयी हैं'—इसी समाधान और आनन्दमें उनके माता-पिता थे। उन्हें 'वेणु वापस आ गयी है'—यह जानकर बहुत बड़ा धक्का-सा लगा। वेणु अब अकेली नहीं, साथमें बहुत सारी जननिन्दा भी लायी है—यह समझनेपर उसपर अत्यन्त क्रोधित हो गये। उन्होंने उसे बहुत समझाया, पर वेणाबाई जिदपर अड़ी रहीं और उनसे कह दिया।

माझे आराध्य दैवत। परम गुह्य गुह्यातीत।
गुह्यपणाची मात। न चले जेथे।

आखिर वेणुको समझाने और उसका मन बदलनेका प्रयास करनेके बदले उसको इस संसारसे ही नष्ट कर डालनेका विचार माता-पिताने पक्का किया। कारण था—

कुलीनस्य च या निन्दा वधो वाऽमित्रकर्शनम्।
महद्गुणो वधो राजन् न तु निन्दा कुजीविका॥

अगर कुलीन मनुष्यपर निन्दा अथवा वध होनेका प्रसंग आया तो वध होना—यही बहुत अच्छा होता है, किंतु जीवित रहते हुए दुःखदायक निन्दा सहन करना अच्छा नहीं—इसी विचारसे माता-पिताने भोजनमें महाविष मिलाकर वेणाबाईको मार डालनेका विचार किया और एक दिन सचमुच उनके भोजनमें विष मिला दिया। सबका भोजन हो चुकनेपर थोड़ी देर बाद उनके पेटमें गये विषने परिणाम दिखाना शुरू किया। शरीरमें विष फैलने लगा। शरीर सँभाल पाना कठिन होने लगा। वे गिरने लगीं। शरीरका दाह असहनीय हो गया। वेणाबाई कमरेमें जाकर जमीनपर एक कपड़ा डालकर लेट गयीं। उनको ज्ञान नहीं था कि उनके शरीरमें विष गया है और इससे वे मरनेवाली हैं। उनके शरीरकी इन्द्रियाँ शिथिल पड़ने लगीं। प्राण खिंचने लगे। अब इतना होनेपर माता-पिता समझ गये कि वेणु थोड़ी ही देरमें मरनेवाली है। उन्होंने दरवाजा बाहरसे बन्द कर दिया। कड़ी लगा दी। वैसे ही कमरेकी सारी खिड़कियाँ भी बन्द करके वे उसके मरनेकी राह देखने लगे। वेणाबाईकी आँखोंके सामने अँधेरा छा गया। वे समझ चुकी थीं कि अब श्रीसद्गुरु समर्थ रामदास स्वामीजीसे भेंट होना असम्भव है। उनकी सेवा, दर्शन और सत्संग अब कुछ नहीं हो सकेगा। वे इसीसे बहुत दुखी हुईं और कहने लगीं—

देवाच्या सख्यत्वा साठीं। पाडाव्या जिव-
लगांच्या तुटी। सर्व अर्पावे शेवटीं। प्राण तो ही वेचावा॥

वेणाबाई श्रीसद्गुरु समर्थको स्मरण करती हुई सारे क्लेश सहन कर रही थीं। आखिर उनकी अवस्था कैसी दुःखसे भरी असहनीय हो रही है—यह सब कुछ श्रीसमर्थ सद्गुरुने अन्तर्ज्ञानसे जान लिया और वे जहाँ थे, वहाँसे तुरन्त आकाशमार्गसे वेणाबाईके

कमरेमें आकर प्रकट हुए। समर्थ स्वामीजीको देखकर वेणाबाई सारा क्लेश क्षणभरमें भूल गयीं। उन्हें अत्यन्त आनन्दकी अनुभूति हुई। उन्होंने इस कठिन हालतमें भी समर्थ सद्गुरुको साष्टांग प्रणाम किया। श्रीसमर्थने अपना कृपाहस्त वेणाबाईके शरीरपर फेरा। उनके कृपाहस्त-स्पर्शसे वेणाबाईका विषसे भरा शरीर पूर्ववत् नीरोग और स्वस्थ हो गया और समर्थ स्वामीके साथ उनका सम्भाषण शुरू हो गया। विषसे तड़पती वेणाबाई अब निश्चित मरेगी—ऐसा सोचकर माता-पिता दरवाजेके पास बाहर ही थे। तभी वेणा किसीसे बातचीत कर रही हैं—ऐसा सुनायी पड़ा, उन्होंने दरवाजेकी दरारसे देखा तो वेणाबाई समर्थ सद्गुरु रामदास स्वामीजीसे बातें कर रही हैं—ऐसा दिखायी दिया। उन्होंने दरवाजा खोला तो वेणाबाईका शरीर विषरहित दुःखरहित पूर्ववत् देखा। वे समर्थसे बातचीत कर रही हैं। श्रीसमर्थ उसके सामने चौकीपर बैठे हुए हैं। वेणाबाई भी सामने ही बैठी हैं। ऐसा देखकर माता-पिताने श्रीसमर्थ सद्गुरुको साष्टांग प्रणाम किया। वे कहने लगे—'हम अत्यन्त हीन बुद्धिके हैं। जननिन्दा सुनकर हमने वेणाबाईको विष भोजनमें मिलाकर खिला दिया, पर आपकी कृपासे हमारी वेणु हमें वापस मिल गयी।'

इसपर श्रीसमर्थ सद्गुरु बोल पड़े—'तुम्हारी वेणु? वह आपकी वेणु तो कबकी मर चुकी। आपने इसपर विषप्रयोग किया, तभी वह आपको छोड़ चुकी, अब जो वेणाबाई आपको दिखायी दे रही है, वह समर्थ-शिष्या वेणाबाई है और वह अब हमारे साथ प्रभु श्रीरामचन्द्रजीकी सेवा तथा कार्यके लिये यहाँसे बाहर निकलनेवाली है।'

वेणाबाईके माता-पिताने श्रीसमर्थसे बहुत विनती की, परंतु श्रीसमर्थ वेणाबाईकी अनन्य निष्ठापर प्रसन्न थे। वेणाबाईने भी माता-पिताका कहना न मानकर समर्थके साथ जानेकी तैयारी की।

इसके बाद श्रीसमर्थने वेणाबाईको ले जाकर अपने शिष्य कल्याणस्वामीजीकी माता अक्काबाईके हाथों सौंप दिया। वे अक्काबाईके साथ मठमें आने-जानेवालोंकी व्यवस्था, वहाँका कारोबार, उत्सवादि सभी प्रसंगोंमें, कीर्तनोंमें, भजनों और भोजन-व्यवस्थाओंमें हमेशा कार्य करतीं और श्रीरामभक्तिमें मगन हो जातीं। वे श्रीराम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्नको अपने भाई और सीतामाताको भाभी मानकर उनकी सेवा करती रहती थीं। उनसे एक अलग-सा रिश्ता-नाता उन्होंने जोड़ लिया था। अनेक ग्रन्थोंका अध्ययन करके अपनी कुशाग्र बुद्धि और तीव्र स्मरण-शक्तिका परिचय देकर उन्होंने श्रीसमर्थ सद्गुरुकी शिष्याओंमें सबसे अधिक कर्तृत्ववान् और विदुषी महिलाके रूपमें ख्याति प्राप्त की। स्वतन्त्ररूपसे महिला मठाधिपति भी समर्थने उन्हें बनाया था। वे कीर्तन करके लोकसंग्रह तथा लोकजागृतिका कार्य और श्रीरामप्रभुकी भक्तिका मार्ग लोगोंको समझाती थीं।

मसूर गाँवमें श्रीसमर्थने हनुमान्‌जीकी स्थापना शक संवत् १५९७ में पार्थिव नामक संवत्सरमें की और चैत्र शुक्ल प्रतिपदाको श्रीरामजन्मोत्सवके उपलक्ष्यमें सिंहासनपर बैठी श्रीराममूर्तिकी भव्य शोभायात्रा निकाली। इस मार्गमें देवालयकी तरफ आते समय पताकाओं, ध्वजाओंकी लाठियाँ आमके पेड़से अटकनेसे शोभायात्रा रुकी। कुएँके ऊपर आमकी शाखा थी, उसे काटनेका विचार बना। तब यवन अधिकारीकी आज्ञाके बिना शाखा नहीं काटी जा सकती थी। बीजापुर दरबारकी आज्ञा चाहिये थी। तब गुप्तरूपसे श्रीसमर्थ स्वयं बीजापुर दरबारमें जाकर प्रकट हुए और डाल काटनेका आदेश—दरबारसे मोहरबन्द आज्ञापत्र लेकर आये। यवन अधिकारीको दरबारका आदेश-पत्र दिया और शिष्योंको डाल काटनेकी आज्ञा देकर कहा 'डाल काटो।' बहुतसे शिष्य आज्ञा सुनते ही पेड़पर चढ़े, लेकिन डाल कुएँकी तरफ बैठकर पेड़से काटनेकी आज्ञा श्रीसमर्थके देते ही सब नीचे उतरे। केवल अम्बादास नामका शिष्य आज्ञानुसार डालको काटने

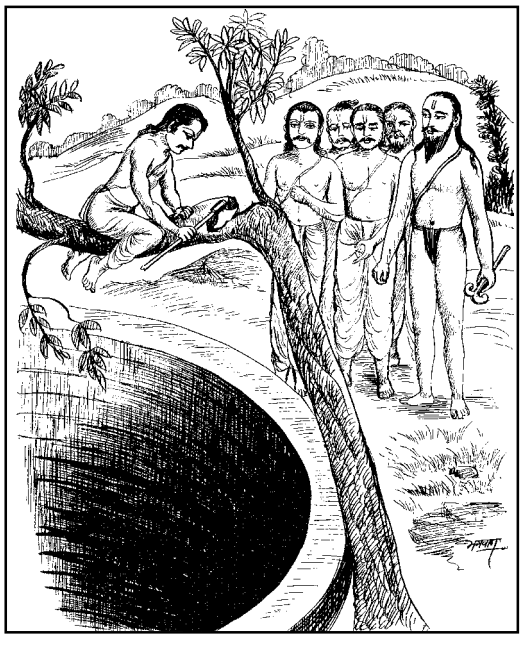

लगा। सबने कहा—'नीचे कुएँमें गिरोगे, तुम उतर आओ।' लेकिन वह नहीं माना। डाल काटते ही वह पहले और ऊपर डाल इस प्रकार कुएँमें गिर गया। शोभायात्रा मन्दिरमें आयी। सब भोजनादि कर चुके। धीरे-धीरे शाम होने लगी। वेणाबाई श्रीसमर्थसे बार-बार बेचैनीसे विनती और आग्रह करने लगीं। अम्बादासका क्या हुआ, उसे चलकर देखिये। उसे तैरना नहीं आता है, वह मर जायगा और समर्थ कहते रहे 'जो होगा होने दो। तैरना नहीं जानता तो मरेगा, इससे और अधिक क्या होगा?' अन्तमें वेणाबाईके आग्रह करने और अधिक व्याकुल होनेपर श्रीसमर्थ कुएँके पास जाकर पुकारने लगे—'अम्बादास, ऊपर आओ' और हाथ जोड़कर अम्बादास बाहर ऊपर आया। श्रीसमर्थ कुएँके पास खड़े थे, पूछ रहे थे कल्याणरूप हो ना? अम्बादास बोला—'जी, मैं आनन्द और कल्याण-रूप हूँ।'

तब श्रीसमर्थ सद्गुरु रामदास स्वामीजीने उसे अपने पास बाहर बुला लिया और उसका नाम 'कल्याण' रखा और गाँववालोंको शक्कर बाँटी। ये कल्याणस्वामी बड़े होकर श्रीसद्गुरुके पट्ट शिष्योंमें योगिराज कल्याणस्वामीके नामसे विख्यात हुए। ये ही श्रीसद्गुरुके दासबोध ग्रन्थके लेखक बने।

कल्याणस्वामीकी माता अक्काबाई चाफलमठकी व्यवस्थापक और भोजन व्यवस्थासम्बन्धी सम्पूर्ण कार्य देखती थीं। रसोईघर तो उन्हींकी देख-रेखमें तथा उन्हींका कार्यक्षेत्र था। समर्थ जब चाफल मठमें रहते तो वे उनके मनपसन्द पदार्थोंको श्रीरामजीके नैवेद्यहेतु तैयार करवाकर उनके पूजाघरमें राममन्दिरमें भेजती थीं।

एक समय उन्होंने वेणाबाईसे नैवेद्य परोसकर श्रीसमर्थ स्वामीको देनेको कहा। वेणा सारे पदार्थोंको भोजनके समय कमरेमें नैवेद्य दे आयीं और दरवाजा बाहर आकर बन्द कर दिया। रसोईमें बैठी अक्काने पूछा—'वेणा! पूरा नैवेद्य ठीकसे परोसा और थाली पहुँचा आयी न?' वेणाबाई सोचमें डूबी। उन्हें स्मरण हुआ कि भोग नैवेद्यपर गौका शुद्ध घी परोसना भूल गयी है। अतः तुरन्त घी लेकर फिर बन्द दरवाजेके पास पहुँची। द्वार धीरेसे खोलकर भीतर गयी। उन्होंने देखा कमरा दिव्य तेजसे भरा है। भगवान् श्रीराम, लक्ष्मण, सीता, हनुमान्‌जी, श्रीसमर्थ रामदासस्वामीजी सब भोजन कर रहे हैं। इस तरह दर्शन करके वे बेहोश होकर गिर पड़ीं। उनके गिरते ही समर्थका ध्यान उनकी तरफ गया और सब कुछ अदृश्य हो गया। श्रीसमर्थने शिष्योंको बुलाया और वेणाको ले जानेको कहा। ऐसी श्रीरामभक्ति थी वेणाकी, जिसके कारण उन्हें भगवान्‌ने प्रत्यक्ष दर्शन दिये।

श्रीसमर्थ सद्गुरुसे वेणाबाई बार-बार देहत्यागार्थ आज्ञा माँगने लगीं। आयु हो गयी थी, शरीर क्षीण हो रहा था। श्रीरामदर्शन, श्रीरामोपासना सब परिपक्व हो गये थे। आत्मज्ञानसम्पन्न थीं। भक्तिमें कीर्तनभक्ति ऊँचे दर्जेपर पहुँची थी। नामस्मरणसे वे सिद्धयोगिनी बन चुकी थीं। चेहरेपर सुख, शान्ति और समाधानके साथ प्रसन्नता देखते ही बनती थी। श्रीसमर्थ दो सालतक उनकी विनती टालते रहे, वे अपने मठाधिपतिके कार्य और लोकसंग्रहमें लगी रहीं। तीसरे वर्ष वे श्रीरामजन्मोत्सवके निमित्त चाफलमठमें अक्काबाईके पास आयीं, फिरसे श्रीसमर्थसे विनती की। उन्हें तो श्रीराम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न और सीतामैयासे मिलनेकी तीव्र उत्कण्ठा लगी थी। समर्थसे कहती—'मैं

आपकी आज्ञाका पूरे जीवन पालन करती रही। अब अन्त समयमें आपकी आज्ञाके बिना भगवान् श्रीरामसे मिलने नहीं जा सकती। कब आज्ञा देनी है, बताइये ?' समर्थ हर समय 'कल देखेंगे' यही उत्तर देते।

वेणाबाई कहती—'मेरी लक्ष्मणभैयाके चरण दबानेकी, श्रीरामभैयाके चरणोंपर मस्तक रखनेकी, सीता भाभीका आलिंगन करनेकी, भरतजीको मनभर देखनेकी, जिन्होंने भाई रामके वियोगमें तड़पकर चौदह वर्षोंतक संन्यस्त वृत्तिसे सजग रहकर राज्य और सिंहासन दोनोंको सँभाला, पर सिंहासनका स्वीकार पिताकी आज्ञा रहते हुए भी नहीं किया था—उनसे मिलनेकी—उन्हें देखनेकी इच्छा होती है। तीनों बड़े भाइयोंकी आज्ञाका पालन करनेवाले शत्रुघ्न बन्धुसे मिलना चाहती हूँ। अंजनीसुत हनुमान्‌जीके चरणोंमें लोटना चाहती हूँ। कब आज्ञा देंगे आप? आपकी आज्ञाके बिना मैं यह सब नहीं कर सकती; क्योंकि तब इसमें सफलता भी नहीं पा सकूँगी।'

श्रीसमर्थ 'कल सोचेंगे' कह देते। एक दिन जब वे प्रातः मुँह धो रहे थे, उस समय वेणाबाईने फिरसे आकर आज्ञा माँगी। वे बोले—'आज दोपहरके बाद आज्ञा दूँगा। श्रीसमर्थने अक्कासे वेणाबाईके मनपसन्द पदार्थोंका भोजन बनानेको कहा। श्रीरामजीको नैवेद्य भोग देनेके बाद सबका भोजन हुआ। भोजन-पंक्तिमें बहुत सजावट और बहुत उत्साह आनन्द था। भोजन करते समय श्रीसमर्थ सद्‌गुरुने वेणाबाईको अपने पासकी थालीमें भोजन कराया। भोजनके उपरान्त शिष्योंको कीर्तनकी तैयारी करनेकी आज्ञा दी। वेणाबाईसे उन्होंने कहा—वेणा! कीर्तन करो, इसके बाद तुम्हारा सुन्दर कीर्तन हम सबको फिर सुननेको नहीं मिल पायेगा। 'आज्ञा प्रमाण' कहकर ६ से ८ घंटेतक भजनोंसहित आत्मनिरूपण विवेचन आख्यानादि क्रमसे वेणाबाईने पूर्णभक्ति और विद्वत्तासे भरा कीर्तन किया। समर्थसहित सभी उस कीर्तनको स्वयंको भूलकर सुनते रहे।

कीर्तनकी समाप्तिपर श्रीसमर्थने वेणाबाईसे आरती और प्रसाद-वितरणके पश्चात् कहा—'अब आज्ञा है। जाओ वेणा! भगवान् श्रीरामके पास जाकर उनकी सेवा करो।' आज्ञा मिलते ही वेणाबाईने सद्‌गुरु रामदास-स्वामीजीके चरणोंपर अपना मस्तक टेक दिया। 'आज्ञा प्रमाण' इतने ही शब्द निकले। नेत्रोंके जलसे उन पावन चरणोंको धोया और फिर वेणाबाईका निष्प्राण शरीर वैसा ही रह गया। शिष्योंने उन्हें अलग किया। अक्काबाई छोटी बहनके दुःखसे रो पड़ीं। उसे गले लगाया। सभी दुःखसागरमें डूबने लगे। श्रीसमर्थने भी अपने आँसुओंको बहनेसे रोकनेमें असमर्थताका अनुभव किया और अपने छलके आँसुओंको एक तरफ मुँह करके चुपकेसे पोंछ लिया। और इस प्रकार वेणाने महाप्रयाण किया।

अतिथिकी योग्यता नहीं देखनी चाहिये

महात्मा इब्राहीमका नियम था कि वे किसी अतिथिको भोजन कराये बिना भोजन नहीं करते थे। एक दिन उनके यहाँ कोई भी अतिथि नहीं आया। इसलिये वे स्वयं किसी निर्धन मनुष्यको ढूँढ़ने निकले। मार्गमें उन्हें एक अत्यन्त वृद्ध तथा दुर्बल मनुष्य मिला। उसे वे बड़े आदरपूर्वक घर ले आये। हाथ-पैर धुलवाकर भोजन करनेके लिये बैठाया। अतिथिने भोजन सम्मुख आते ही ग्रास उठाया। उसने न तो भोजन मिलनेके लिये ईश्वरको धन्यवाद दिया, न ईश्वरकी बन्दगी की। इब्राहीमको इस व्यवहारसे क्षोभ हुआ। उन्होंने अतिथिसे इसका कारण पूछा। अतिथिने कहा—'मैं तुम्हारे धर्मको माननेवाला नहीं हूँ, मैं अग्निपूजक (पारसी) हूँ। अग्निको मैंने अभिवादन कर दिया है।'

'काफिर कहीं का! चल निकल मेरे यहाँसे!' इब्राहीमको इतना क्रोध आया कि उन्होंने वृद्धको धक्का देकर उसी समय घरसे निकाल दिया।

'इब्राहीम! जिसे इतनी उम्रतक मैं प्रतिदिन खूराक देता रहा हूँ, उसे तुम एक समय भी नहीं खिला सके! उलटे तुमने निमन्त्रण देकर, घर बुलाकर उसका तिरस्कार किया!' उस आकाशवाणीको, जो उसी समय हुई, इब्राहीमने सुना। अपने गर्व तथा व्यवहारपर उन्हें अत्यन्त दुःख हुआ। उन्होंने वृद्धसे तत्काल क्षमा माँगी।

गौमाताकी बुद्धिमानी

घटना अगस्त सन् १९९५ ई०की है। कैमोर पहाड़की सुरम्य घाटी तथा शिखरोंके नीचे सतना जिलेकी अमरपाटन तहसीलका एक गाँव है—'ताला'। यह गाँव प्राकृतिक सौन्दर्यसे परिपूर्ण है। गाँवके दक्षिणमें कैमोर पहाड़ घने वनोंसे आच्छादित है तथा गाँवके उत्तरमें बीहर नदी बहती है, अत: चारे और पानीकी पर्याप्त उपलब्धता होनेके कारण अधिकांश लोग कृषि एवं गोपालन करते हैं।

इसी गाँवमें एक ब्राह्मण-परिवार रहता है, जो आस्तिक तथा गोप्रेमी है। इनकी दो गायें हैं, जिन्हें चरवाहा जंगलमें चरनेके लिये गाँवके अन्य पशुओंके साथ ले जाता है। उनमेंसे एक गाय गर्भ धारण किये थी, जो जल्दी ही ब्यानेवाली थी। घरके लोग यह न जान सके कि गाय आज ही बच्चा जनेगी, इसलिये उसे रोजकी भाँति ही १६ अगस्त, ९५ को भी सबेरे चरनेके लिये जंगल भेज दिया गया।

गाय दोपहरके बाद पशुओंके समूहसे न जाने कब अलग हो गयी तथा घने जंगलमें कहीं खो गयी और चरवाहाके खोजनेपर भी नहीं मिली। शामको गाय जब घर नहीं लौटी तो घरके सारे लोगोंने चिन्तित होकर गाँवके आस-पास ढूँढ़ा, पर गाय नहीं मिली। दूसरे दिन १७ अगस्त, ९५ को मुखिया ७-८ लोगोंके साथ जंगलमें गाय ढूँढ़ने गये, पर वहाँ भी गाय नहीं मिली, सभी लोग निराश लौट आये। पूरी रात बारिश होती रही, अत: गायके अनिष्टकी आशंकासे परिवारके सभी लोग अत्यन्त चिन्तातुर हो गये।

तीसरे दिन १८ अगस्त, ९५ को सायंकाल गाय जंगलकी तलहटीमें अकेली पशुसमूहके पास आयी और पशुओंसे अलग खड़े चरवाहेको देख जोरसे रँभाने लगी। चरवाहेने उस गायको देख नाम लेकर पुकारा, तब वह चरवाहेके पास आ गयी। चरवाहेने देखा कि गायका पेट खाली है, यह कहीं बच्चा जनकर आयी है। इसके बाद वह गाय जंगलकी ओर दौड़ पड़ी, तो चरवाहा भी गायके पीछे-पीछे कुछ दूर गया, पर अचानक वर्षा शुरू हो जानेसे गायको सायंकाल अन्य पशुओंके साथ घर ले आया। गायको देखकर घरके सभी लोग अत्यन्त प्रसन्न हुए और उस गौमाताकी विधिवत् पूजा-अर्चना की। हाथ-पाँव धोकर गौमाताकी आरती की, खिलाया-पिलाया। परंतु गाय घरके मुखियाको जब-जब देखती, जोर-जोरसे रँभाती, सींगसे सहलाकर जंगलकी ओर इशारा करती, पर लोग समझ नहीं पा रहे थे। सब यही कहते कि गायका बच्चा जंगलमें जानवर आदि खा गये होंगे। इस प्रकार रातभर पानी बरसता रहा, मेघ गरजते रहे, गाय सारी रात बाँय-बाँय करती रही। अगले दिन प्रात: अर्थात् १९ अगस्त, ९५ को मुखियाजीने उस गायको जब खोल दिया, तब वह सीधे जंगलकी ओर भागी। मुखियाजी भी गाँवके दो गोपालकोंको लेकर जिज्ञासा-वश उसके पीछे-पीछे चल पड़े। किसीको प्रभुके विधानका क्या पता? वह गाय जंगलकी ओर तेजीसे दौड़ी जा रही थी और जब ये लोग उतना तेज नहीं चल पाते तो गाय खड़ी हो जाती और जब वे पास आ जाते तो वह पुन: आगे दौड़ने लगती। इस प्रकार वह गाय उन्हें घरसे लगभग ४-५ किलोमीटर दूर घने जंगलमें ले गयी, जहाँ एक टीलेपर पथरीले झाड़ियोंसे आच्छादित सर्वत: सुरक्षित गुफामें उसकी बछिया बैठी थी।

टीलेपर चढ़कर गायने जैसे ही आवाज दी, त्यों ही उस गुफासे वह बछिया निकल आयी और अपनी माँका दूध पीने लगी। ये लोग यह दृश्य देखकर आनन्दविभोर हो गये। बरबस प्रभुका आभार माना। वह बछिया जहाँ बैठी थी, उस स्थानको जब इन लोगोंने देखा तो और चकित हो गये। टीलेके पूर्वी छोरपर एक ५ फुट ऊँचा पत्थर, उसके पूर्व २५-३० फुट गहरी खाईं और उत्तरकी तरफ उसी पत्थरसे लगा एक पत्थर है। उसके समीप ही एक नाला है। दक्षिणकी तरफ भी एक पत्थर है। पश्चिमकी ओर वह खुला है। उसकी बनावट चूल्हे-जैसी है। चूल्हेके भीतर ५-६ फुट ऊँचा एक पलाशका पेड़ है। उसीके पत्तोंसे वह चूल्हा ढका था, जिससे पानीकी बूँदे अन्दर नहीं जा सकती थीं। इसी कारण भीषण वर्षामें भी बछिया सुरक्षित बैठी रह गयी। इतने सुरक्षित स्थानमें गायके बच्चा जननेकी बुद्धिमानीसे सभी लोग आश्चर्यान्वित थे।

तत्पश्चात् सभी लोग गाय एवं बछियाको लेकर वापस घर आये। जो भी देखता, सुनता वह गायके प्रति श्रद्धावनत हो शत-शत नमन करता। सच है—

एकत्र पृथ्वी सर्वा सशैलवनकानना।
तस्या गौर्ज्यायसी साक्षादेकत्रोभयतोमुखी॥

—रघुवंश त्रिपाठी

प्रेरणा-पथ—

अपनी ओर निहारो

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

हम स्वयं अपने नेता बनें और यह समझें कि नेता किसे कहते हैं? और राष्ट्र किसे कहते हैं? राष्ट्रमें बलका उपयोग होता है और जो नेता है, वह समझदारीका उपयोग करता है, समझाता-बुझाता है। नेता उसीको कहते हैं। आपके जीवनमें जो बुद्धिका स्तर है, समाजमें वही नेताका स्तर है। आपके जीवनमें जो मनका स्थान है, समाजमें वही राष्ट्रका स्थान है। मनके द्वारा इन्द्रियोंपर शासन होता है, किंतु बुद्धिके द्वारा हम स्वयं अपनेको समझाते हैं। जो अपनेको समझा सके। क्या समझा सके? समझा सके कि जाने हुएका अनादर नहीं करूँगा, मिले हुएका दुरुपयोग नहीं करूँगा, सुने हुए प्रभुमें अश्रद्धा नहीं करूँगा। आप श्रद्धा करें या न करें, आपकी रुचि। अगर आपने अपनेको यह समझा लिया कि मैं जाने हुएका अनादर नहीं करूँगा, मिले हुएका दुरुपयोग नहीं करूँगा, सुने हुए प्रभुमें अश्रद्धा नहीं करूँगा, तब परिणाम होगा कि जाने हुएका अनादर न करनेसे, सिर्फ अनादर न करनेसे, क्या होगा? जब आप जाने हुएका अनादर नहीं करेंगे, तब आपके जीवनमें तीन प्रकारकी स्मृति जाग्रत् होगी—कर्तव्यकी स्मृति, स्वरूपकी स्मृति और अपने प्रभुकी स्मृति, अथवा यों कहिये कि जब आप जाने हुएका अनादर नहीं करेंगे, तब आपके जीवनमें-से संगका नाश होगा, असंगता प्राप्त होगी। आपके जीवनमें-से अकर्तव्यका नाश होगा, कर्तव्य-परायणता प्राप्त होगी। आपके जीवनमें-से आसक्तियोंका नाश होगा, प्रेमका प्रादुर्भाव होगा। जाने हुएके आदरमें ही कर्तव्यपरायणता, असंगता और आत्मीयता निहित है।

दूसरी बात यह कि जब आप मिले हुएका दुरुपयोग नहीं करेंगे, तब सबल और निर्बलमें एकता होगी। यह जो सुन्दर समाजका निर्माण होता है, यह खाली स्कीमोंसे नहीं होता है, योजनाओंसे नहीं होता है, कानूनोंसे नहीं होता है। सुन्दर समाजका निर्माण होता है—बलका दुरुपयोग न करनेसे, मिले हुएका दुरुपयोग न करनेसे। जब हम मिले हुएका दुरुपयोग नहीं करते हैं, तब हमारे द्वारा दूसरोंके अधिकार सुरक्षित होते हैं और जब हमारे द्वारा दूसरोंके अधिकार सुरक्षित होते हैं, तो परस्पर एकता होती है। जब एकता होती है, तो स्नेहकी वृद्धि होती है, विश्वासकी वृद्धि होती है। जब परस्पर स्नेह और विश्वासकी वृद्धि होती है, तब जो नहीं करना चाहिये, उसकी उत्पत्ति ही नहीं होती। तब अपने-आप एक ऐसे सुन्दर समाजका निर्माण हो जाता है कि जिसको पुलिसकी, फौजकी, न्यायालयकी, लड़ाईके सामानकी जरूरत ही नहीं होती। इस बातको सुनकर मेरे बहुत-से मित्र यह सन्देह करते हैं, कहते हैं, 'महाराज! आप ऐसी जो बात कहते हैं, वह व्यक्तिगत रूपसे तो बिलकुल ठीक मालूम होती है, किंतु सामूहिक रूपसे ऐसा होना सम्भव नहीं है।' परंतु यदि आप गम्भीरतापूर्वक विचार करें, तो आपको यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि जो न्याय, जो ईमानदारी, जो प्रेम, जो श्रद्धा, जो विश्वास और जो सच्चरित्रता स्वयं आपके जीवनमें आ जाती है, वह व्यापक हुए बिना नहीं रह सकती। इसीलिये व्यक्तिकी सुन्दरतापर ही समाजकी सुन्दरता निर्भर करती है और इसीलिये यह बात कही गयी है कि व्यक्ति अपने जीवनको सुन्दर बनाकर ही समाजमें सुन्दरता ला सकता है। जीवन सुन्दर कैसे होता है? जीवन सुन्दर होता है, सत्संगसे। और हम सत्संग करनेमें क्या स्वाधीन नहीं हैं? हैं, सभी स्वाधीन हैं। अपने जीवनमेंसे अपने जाने हुए असत्के त्यागमें हम सभी स्वाधीन हैं।

[प्रेषिका—सुश्री साध्वी अर्पिताजी]

साधनोपयोगी पत्र

(१)

शंका-समाधान

प्रिय महोदय! सादर हरिस्मरण। आपका कृपापत्र प्राप्त हुआ। आप मुझसे अपने संशयकी निवृत्ति कराना चाहते हैं और साथ ही रामचरितमानसके शब्दोंमें यह भी लिखते हैं—***'तौ प्रभु हरहु मोर अग्याना।'*** किंतु आपको मेरे लिये इस प्रकारके शब्द नहीं लिखने चाहिये। मैं न तो 'प्रभु' कहलानेका अधिकारी हूँ और न किसीका अज्ञान दूर करनेकी ही मुझमें शक्ति है। मैं तो एक साधारण वैश्य-बालक हूँ। अवश्य ही बाल-विनयके रूपमें आपके प्रश्नोंका उत्तर अपनी बुद्धिके अनुसार देनेकी चेष्टा करता हूँ। यदि इससे आपका कुछ भी समाधान हुआ तो मुझे सन्तोष होगा।

(१) आपने श्रीरामचरितमानसकी प्रशंसामें जो कुछ लिखा, वह ठीक ही है। आपका यह भी लिखना ठीक है कि 'रामचरितमानसके एक-दूसरेसे भिन्न अनेकों संस्करण छप चुके हैं और सभी अपनी-अपनी दृष्टिसे ठीक हैं। ऐसी दशामें किसके सम्बन्धमें यह कहा जाय कि वह ठीक गोस्वामीजीके प्रतिके अनुसार है?' क्षेपकोंने तो इस प्रश्नको और भी जटिल बना दिया है। आपने लिखा कि 'यदि कोई इन क्षेपकोंके सहित रामचरितमानसका पाठ करता है तो क्या उसे रामचरितमानसके पाठका फल नहीं मिलेगा?' इसका उत्तर यह है कि अपनी समझसे जो शुद्ध-से-शुद्ध क्षेपकरहित संस्करण हो, उसीका पाठ करना चाहिये। यद्यपि क्षेपकसहित पाठ करनेमें कोई हानि तो नहीं प्रतीत होती, तथापि जहाँ अपने मनमें यह निश्चय हो कि अमुक पाठ क्षेपक है, वहाँ उसका पाठ न करना ही अच्छा है; क्योंकि उससे पाठ खण्डित तो हो ही जाता है। क्षेपक-पाठ चाहे शास्त्रसम्मत ही क्यों न हो, वे तुलसीदासजीकी कृति न होनेके कारण रामचरितमानसके अंग तो हो नहीं सकते। ऐसी दशामें जो रामचरितमानसका पाठ करना चाहते हैं, वे रामचरितमानसके बाहरकी चीजका पाठ उसके साथ क्यों करेंगे? आशा है, यह बात सहज ही आपकी समझमें आ जायगी।

रही यह बात कि क्षेपक जोड़नेवालोंने न्याय किया या अन्याय, तो इसका भी उत्तर स्पष्ट ही है। जो बात किसी ग्रन्थमें है ही नहीं, उसे अपनी ओरसे उसमें जोड़ देना और उसे ग्रन्थकारकी ही रचना कहकर प्रसिद्ध करना न्यायसंगत कैसे कहा जा सकता है। स्वामीकी दृष्टिमें उनका यह अपराध क्षम्य है या अक्षम्य, इसे तो स्वामी ही जानें; मैं इस विषयमें क्या कह सकता हूँ। इतनी बात इस सम्बन्धमें अवश्य कही जा सकती है कि यदि कोई अपने अपराधको अपराध समझकर उसे प्रभुसे क्षमा कराना चाहे तो उसे वे अवश्य क्षमा कर देते हैं, चाहे उसका वह अपराध दूसरोंकी दृष्टिमें कितना ही अक्षम्य क्यों न हो।

(२) दूसरी बात आपने यह लिखी है कि 'गीता, भागवत तथा रामचरितमानस आदि ग्रन्थोंमें केवल अधिकारियोंको ही इन ग्रन्थोंको सुनानेकी आज्ञा दी गयी है; ऐसी स्थितिमें यत्र-तत्र सर्वसाधारणके सामने इन ग्रन्थोंकी कथा कहना तथा इन्हें मुद्रित एवं प्रकाशित कराके थोड़े मूल्यपर जनसाधारणके हाथों बेचना और इस प्रकार अधिकारी-अनधिकारी—सबके लिये सुलभ बना देना कहाँतक ठीक है और ऐसा करनेसे क्या इन ग्रन्थोंका आदर होनेकी अपेक्षा अनादर अधिक नहीं होता?' आपका ऐसा लिखना शास्त्रीय दृष्टिसे बिलकुल यथार्थ है। वास्तवमें इन ग्रन्थोंका उपदेश तथा प्रवचन अधिकारी भक्तोंके सामने ही होना चाहिये और अधिकारी लोगोंके हाथोंमें ही इन ग्रन्थोंको देना भी चाहिये। परंतु वर्तमान युग नास्तिकताका युग है। इस युगमें इन ग्रन्थोंका साधारण-सा प्रेमी भी इनका अधिकारी ही माना जाना चाहिये। वैसे अधिकारी जिनका शास्त्रोंमें उल्लेख मिलता है, इस युगमें मिलने बहुत ही कठिन हैं।

दूसरी बात यह है कि आप जानते हैं वर्तमान युग

प्रचारका युग है। इस समय सब लोग अपना-अपना प्रचार करनेमें लगे हुए हैं। कोई भी इस मामलेमें पीछे नहीं रहना चाहता। ऐसे समयमें जब चारों ओर प्रचारकी धूम मची है, हमलोगोंके लिये इस दिशामें पीछे रहना बुद्धिमानी नहीं कहा जा सकता। इस युगमें प्रचारके सबसे बड़े साधन हैं—प्रेस और व्याख्यान-मंच। सब लोग इन साधनोंका अधिक-से-अधिक उपयोग कर रहे हैं। ऐसी दशामें हमलोग भी यदि उक्त साधनोंका उपयोग न करें तो इसका परिणाम यह होगा कि जगत्‌में दूसरे-दूसरे सिद्धान्तों तथा ग्रन्थोंका तो यथेष्ट प्रचार होगा और हम अपने सिद्धान्तों तथा धर्मग्रन्थोंको जगत्‌के सामने नहीं रख सकेंगे, जिससे हमीं लोग घाटेमें रहेंगे; इसलिये वर्तमान परिस्थितिको देखते हुए इन ग्रन्थोंका जनसाधारणमें प्रचार हानिकारक नहीं कहा जा सकता। शेष प्रभुकृपा।

(२)

पापसे बचो और बचाओ

प्रिय महोदय! सादर हरिस्मरण। आपका कृपापत्र मिला। आपने लिखा कि 'मैं अपने एक सम्बन्धीके यहाँ मुनीम हूँ। वे सदा मेरे साथ बड़े प्रेम और सहानुभूतिका बर्ताव करते रहे हैं। इस समय उनकी फर्म घाटेमें है, इसलिये वे अपने एक व्यापारीका रुपया मार लेनेकी नीयतसे मुझसे नकली जमा-खर्च करनेका आग्रह कर रहे हैं; ऐसी स्थितिमें मुझे क्या करना चाहिये?' इस विषयमें मैं तो स्पष्ट कहूँगा कि आपको उनकी बात नहीं माननी चाहिये। उनकी बात न मानकर आप स्वयं ही इस पापसे नहीं बचेंगे, उन्हें भी एक भारी अनर्थसे बचा लेंगे। कैसे आश्चर्यकी बात है! व्यापारी भाई रात-दिन देखते हैं कि अनेकों कार्य-कुशल और लाखोंकी सम्पत्ति रखनेवाले व्यापारी बात-की-बातमें दीवालिये हो जाते हैं और बहुत-से भोले-भाले भाई कर्जसे दबे होनेपर भी कुछ ही दिनोंमें मालामाल हो जाते हैं। यह देखकर भी उन्हें प्रारब्धपर विश्वास नहीं होता और अपनी बुद्धिमानीपर भरोसा करके बेईमानी और धोखेबाजी करनेसे नहीं चूकते। भाई! मिलेगा तो वही, जो तुम्हें मिलना है। व्यर्थ पापका बोझा अपने सिरपर लादकर नरकका सामान क्यों करते हो? यह बात निश्चित है कि धन आदि लौकिक सुख भी पुण्यके ही परिणाम हैं, पापका फल तो सर्वदा दु:ख ही है। इसलिये किसी दु:खसे बचनेके लिये पाप करना तो दु:खको और भी बढ़ाना है। ऐसे पापकर्मसे रोकनेमें जो पुरुष सहायता करता है, वह तो सच्चा शुभचिन्तक है। इसलिये इस पापकर्मको न करनेके कारण यदि आपको अपने मालिकके रोषका पात्र भी होना पड़े तो कोई चिन्ता नहीं। आपका कर्तव्य उन्हें नरकमें जानेसे बचाना ही है। देखिये, प्रह्लादजीने तो अन्याययुक्त होनेके कारण अपने पिताकी भी बात नहीं मानी; फिर आपको अपने मालिककी ऐसी बात माननेकी सलाह कैसे दी जा सकती है। अत: इस समय मोहको दूर रखकर अपने सच्चे कर्तव्यका ही पालन करना चाहिये। शेष प्रभुकृपा।

(३)

दृढ़ आत्मविश्वास

प्रिय महोदय! आपने ***'जौ मम चरन सकसि सठ टारी। फिरहिं रामु सीता मैं हारी॥'*** इस चौपाईका उल्लेख करते हुए पूछा कि अंगदजीको रावणके सामने ऐसी बात कहनेका क्या अधिकार था, सो इसका सीधा अर्थ तो यह है कि यदि कोई दुष्ट मेरे पैरको उठा सकेगा तो राम और सीता तो लौट ही जायँगे; हाँ, मैं हार जाऊँगा। ऐसा कहनेमें तो कोई अधिकारका प्रश्न है ही नहीं। यदि इसका ऐसा अर्थ समझा जाय कि श्रीरामजी लौट जायँगे और मैं सीताजीको हार जाऊँगा, तो इसमें श्रीअंगदजीका दृढ़ आत्मविश्वास ही कारण था। उन्हें निश्चय था कि कोई भी राक्षस मेरा पैर उठा नहीं सकेगा; इसीसे उन्होंने ऐसी बड़ी बात कह डाली। आपके प्रश्नके उत्तरमें ऊपर जो कुछ लिखा गया है, सम्भव है, उससे आपको कुछ सन्तोष हो सकेगा। शेष प्रभुकृपा।

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७६, शक १९४१, सन् २०१९, सूर्य दक्षिणायन, शरद-ऋतु, कार्तिक कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें ३। ३३ बजेतक	सोम	रेवती दिनमें १०।४९ बजेतक	१४ अक्टूबर	**मेषराशि** दिनमें १०। ४९ बजेसे, पंचक समाप्त दिनमें १०। ४९ बजे।
द्वितीया ,, ४। ४० बजेतक	मंगल	अश्विनी ,, १२। ४८ बजेतक	१५ ,,	**मूल** दिनमें १२। ४८ बजेतक।
तृतीया रात्रिशेष ५। २० बजेतक	बुध	भरणी ,, २। २० बजेतक	१६ ,,	**भद्रा** सायं ५। ० बजेसे रात्रिशेष ५। २० बजेतक, **वृषराशि** रात्रिमें ८। ३६ बजेसे।
चतुर्थी ,, ५। २९ बजेतक	गुरु	कृत्तिका ,, ३। २४ बजेतक	१७ ,,	**करक (करवा) संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय** रात्रिमें ७। ५८ बजे।
पंचमी ,, ५। ७ बजेतक	शुक्र	रोहिणी ,, ३। ५७ बजेतक	१८ ,,	**मिथुनराशि** रात्रिमें ३। ५८ बजेसे, **तुला-संक्रान्ति** दिनमें ३। ३ बजे।
षष्ठी रात्रिमें ४। १५ बजेतक	शनि	मृगशिरा सायं ४। १ बजेतक	१९ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ४। १५ बजेसे।
सप्तमी ,, २। ५८ बजेतक	रवि	आर्द्रा दिनमें ३। ३५ बजेतक	२० ,,	**भद्रा** दिनमें ३। ३५ बजेतक।
अष्टमी ,, १। २० बजेतक	सोम	पुनर्वसु ,, २। ५० बजेतक	२१ ,,	**कर्कराशि** दिनमें ९। २० बजेसे, **अहोईव्रत।**
नवमी ,, ११। २३ बजेतक	मंगल	पुष्य ,, १। ४४ बजेतक	२२ ,,	**मूल** दिनमें १। ४४ बजेसे।
दशमी ,, ९। १३ बजेतक	बुध	आश्लेषा ,, १२। २१ बजेतक	२३ ,,	**भद्रा** दिनमें १०। १८ बजेसे रात्रिमें ९। १३ बजेतक, **सिंहराशि** दिनमें १२। २१ बजेसे।
एकादशी रात्रिमें ६। ५४ बजेतक	गुरु	मघा ,, १०। ४८ बजेतक	२४ ,,	**रम्भा एकादशीव्रत** (सबका), **सायन वृश्चिक का सूर्य** दिनमें १२। ५२ बजे, मूल समाप्त दिनमें १०। ४८ बजे।
द्वादशी सायं ४। ३१ बजेतक	शुक्र	पू०फा० ,, ९। १० बजेतक	२५ ,,	**गोवत्सद्वादशीव्रत, प्रदोषव्रत, कन्याराशि** दिनमें २। ४५ बजेसे, **स्वाती का सूर्य** प्रात: ७। ३३ बजे, **धनतेरस, धन्वन्तरि जयन्ती।**
त्रयोदशी दिनमें २। ८ बजेतक	शनि	उ०फा० प्रात: ७। २८ बजेतक	२६ ,,	**भद्रा** दिनमें २। ८ बजेसे रात्रिमें १२। ५९ बजेतक, **नरकचतुर्दशी, श्रीहनुमज्जयन्ती।**
चतुर्दशी ,, ११। ५१ बजेतक	रवि	चित्रा रात्रिमें ४। २४ बजेतक	२७ ,,	**तुलाराशि** सायं ५। ८ बजेसे, **दीपावली।**
अमावस्या ,, ९। ४३ बजेतक	सोम	स्वाती ,, ३। ९ बजेतक	२८ ,,	**सोमवती अमावस्या, अन्नकूट, काशीसे अन्यत्र गोवर्धनपूजा।**

सं० २०७६, शक १९४१, सन् २०१९, सूर्य दक्षिणायन, शरद-ऋतु, कार्तिक शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा प्रात: ७। ५० बजेतक	मंगल	विशाखा रात्रिमें २। १५ बजेतक	२९ अक्टूबर	**वृश्चिकराशि** रात्रिमें ८। २९ बजेसे, काशीमें **गोवर्धनपूजा, भैयादूज, यम द्वितीया।**
तृतीया रात्रिशेष ५। ६ बजेतक	बुध	अनुराधा,, १। ४० बजेतक	३० ,,	**मूल** रात्रिमें १। ४० बजेसे।
चतुर्थी रात्रिमें ४। २२ बजेतक	गुरु	ज्येष्ठा ,, १। ३१ बजेतक	३१ ,,	**भद्रा** सायं ४। ४५ बजेसे रात्रिमें ४। २२ बजेतक, **धनुराशि** रात्रिमें १। ३१ बजेसे, **वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत।**
पंचमी ,, ४। ६ बजेतक	शुक्र	मूल ,, १। ५० बजेतक	१ नवम्बर	**मूल** रात्रिमें १। ५० बजेतक।
षष्ठी ,, ४। २१ बजेतक	शनि	पू० षा० ,, २। ३९ बजेतक	२ ,,	**श्रीसूर्यषष्ठीव्रत।**
सप्तमी रात्रिशेष ५। १२ बजेतक	रवि	उ०षा० ,, ४। ० बजेतक	३ ,,	**भद्रा** रात्रिशेष ५। १२ बजेसे, **मकरराशि** दिनमें ९। ० बजेसे।
अष्टमी ,, ६। २५ बजेतक	सोम	श्रवण रात्रिशेष ५। ४७ बजेतक	४ ,,	**भद्रा** सायं ५। ४९ बजेतक, **गोपाष्टमी।**
नवमी अहोरात्र	मंगल	धनिष्ठा अहोरात्र	५ ,,	**कुम्भराशि** रात्रिमें ६। ५३ बजेसे, **पंचकारम्भ** रात्रिमें ६। ५३ बजे, **अक्षयनवमी।**
नवमी दिनमें ८। ९ बजेतक	बुध	धनिष्ठा दिनमें ८। ० बजेतक	६ ,,	× × × ×
दशमी ,, १०। ७ बजेतक	गुरु	शतभिषा ,, १०। २७ बजेतक	७ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ११। २१ बजेसे, **विशाखाका सूर्य** दिनमें २। ४१ बजे।
एकादशी ,, १२। ३६ बजेतक	शुक्र	पू०भा० ,, १। ४ बजेतक	८ ,,	**भद्रा** दिनमें १२। ३६ बजेतक, **मीनराशि** रात्रिशेष ६। २४ बजेसे, **प्रबोधिनी एकादशीव्रत** (सबका), **तुलसी-विवाह**
द्वादशी ,, २। २२ बजेतक	शनि	उ०भा० ,, ३। ३८ बजेतक	९ ,,	**मूल** दिनमें ३। ३८ बजेसे, **शनिप्रदोषव्रत, चातुर्मास्यव्रत** समाप्त।
त्रयोदशी सायं ४। १७ बजेतक	रवि	रेवती रात्रिमें ६। २ बजेतक	१० ,,	**मेषराशि** रात्रिमें ६। २ बजेसे, **पंचक** समाप्त रात्रिमें ६। २ बजे।
चतुर्दशी ,, ५। ५४ बजेतक	सोम	अश्विनी ,, ८। ६ बजेतक	११ ,,	**भद्रा** सायं ५। ५४ बजेसे रात्रिशेष ५। २८ बजेतक, **श्रीवैकुण्ठचतुर्दशीव्रत, मूल** रात्रिमें ८। ६ बजेतक।
पूर्णिमा रात्रिमें ७। २ बजेतक	मंगल	भरणी ,, ९। ४४ बजेतक	१२ ,,	**कार्तिकीपूर्णिमा, श्रीगुरुनानक-जयन्ती, वृषराशि** रात्रिशेष ४। २ बजेसे, **काशीमें देव दीपावली।**

श्रीभगवन्नाम-जपकी शुभ सूचना

(इस जपकी अवधि कार्तिक पूर्णिमा, विक्रम-संवत् २०७५ से चैत्र पूर्णिमा, विक्रम-संवत् २०७६ तक रही है)

ते सभाग्या मनुष्येषु कृतार्था नृप निश्चितम्।
स्मरन्ति ये स्मारयन्ति हरेर्नाम कलौ युगे॥

'राजन्! मनुष्योंमें वे लोग भाग्यवान् हैं तथा निश्चय ही कृतार्थ हो चुके हैं, जो इस कलियुगमें स्वयं श्रीहरिका नाम-स्मरण करते और दूसरोंसे नाम-स्मरण करवाते हैं।'

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

—इस वर्ष भी इस षोडश नाम-महामन्त्रका जप पर्याप्त संख्यामें हुआ है। विवरण इस प्रकार है—

(क) मन्त्र-संख्या ५८,८२,३१,२०० (अट्ठावन करोड़, बयासी लाख, इकतीस हजार, दो सौ)।

(ख) नाम-संख्या ९,४१,१६,९९,२०० (नौ अरब, इकतालीस करोड़, सोलह लाख, निन्यानबे हजार, दो सौ)।

(ग) षोडश नाम-महामन्त्रके अतिरिक्त अन्य मन्त्रोंका भी जप हुआ है।

(घ) बालक, युवक-वृद्ध, स्त्री-पुरुष, गरीब-अमीर, अपढ़ एवं विद्वान्—सभी तरहके लोगोंने उत्साहसे जपमें योग दिया है। भारतका शायद ही कोई ऐसा प्रदेश बचा हो, जहाँ जप न हुआ हो। भारतके अतिरिक्त बाहर कनाडा, फ्रामिंघम, मलेसिया, मेलबोर्न, मिडिलटाउन, यू०के०, यू०एस०ए०, यूनाइटेड किंगडम, नेपाल आदिसे भी जप होनेकी सूचनाएँ प्राप्त हुई हैं।

स्थानोंके नाम—

अंता, अंधेरी, अंबाजोगाई, अंबाला छावनी, अकोला, अचानामुरली, अजनु, अजमेर, अड़सीसर अडावद, अनघौरा, अनूपशहर, अबोहर, अमरवाड़ा, अमरावती, अमरावतीघाट, अमिलिया, अमेट, अमृतसर, अरइल, अरड़का, अरनिया जोशी, अलवर, अलीपुरकला, असगवाँ, असवार, अहमदाबाद, आऊवा, आइसन, आई०टी०रोड, आगर, आगरा, आडंद, आनन्दनगर, आबूरोड, आमगाँवबड़ा, आमळा, आर्वी, आलेफाटा, आष्टा, आसाङ्ग, इंदौली, इंदौर, इचलकरंजी, इजोत, इतवारी खुर्द, इन्दरवास, इरांग पार्ट-१, इरांग पार्ट-२, इरेल भेली-१, इरेल भेली-२, इलाहाबाद, इसौली, उखुल, उज्जैन, उदयपुर, उदरामसर, उधरनपुर, उसनाडकला, उस्मानाबाद, ऊना एलनावाडा, ऋषिकेश, ऋषिनगर, ओडार सकरी, ओबरा, ककिन्दा, कघारा, कटक, कड़ीला, कदन्ना, कथैया, कनेई, कनैड, करनाल, करही (शुक्ल), करब गाँव, करौदी, कर्मचारीनगर, कल्याण, कवलपुरा मठिया, कसारीडीह, काँगड़ा, काँग्लातोम्बी, काँग्पोक्पी, काकिंदा, काठमांडो, कानपुर, कानड़ी, कान्दीवली, कामता, कालंगल, कालका, कालाडेरा, कालापहाड़, कालियागंज, कालूखाँड़, किरारी, किस्मीदेसर, कीसियापुर, कुक्षी, कुचामनसिटी, कुरुक्षेत्र, कुर्ला, कैथल, कैथापकड़ी, कोईरागै, कोईलारी, कोटड़ा, कोटा, कोठी, कोथराखुर्द, कोथरुड, कोरापुट, कोलकाता, कोलिया, कोलीढेक, कोसीकला, कोहका, कैड़घरा, कौबुलेखा, कौहाकुड़ा, कौलती (नेपाल), कौवाताल, खड़गपुर, खंजरपुर, खगड़िया, खजरेट, खजुरीरुण्डा, खजूरी, खडगवाँकला, खरखो, खर्वा, खाजूवाला, खानकित्ता, खालिकगढ़, खुखुन्दा, खुटपला, खुनखुना, खुरपा, खुरपावड़ा, खिरकिया, खेतराजपुर, खेलदेश पाण्डेय, खैराचातर, खैराबाद, गंगातीकलाँ, गंगाशहर, गंगोह, गंजजलालाबाद, गंजवसौदा, गड़कोट, गढ़पुरा, गणेती, गनेड़ी, गढ़ेरी, गया, गरौठा, गाँधीनगर, गाजियाबाद, गुंडरदेही, गुड़गाँव, गुड़ाकला, गुना, गुरुग्राम, गुलबर्गा, गोकुलेश्वर, गोठड़ा, गोपालगंज, गोपालगढ़, गोपालपुर, गोपिबुंग, गोपेश्वर, गोरखपुर, गोवाडीहा, गौंछेड़ा, गौड़ीहाट, ग्वालियर, घगोंट, घघरा, घुघली, घरवार, घरैहली, घसिपुरा, घाटवा, घाटासेर, घिंचलाय, घिनौर,

घुंसी, चंडीगढ़, चन्द्रपुर, चंदला, चंदौली, चकदही, चक्कीरामपुर, चपकीबघार, चम्बा, चरघरा, चाँडेल, चारहजारे, चिखलाकला, चिचोली, चित्तौड़गढ़, चित्रकूट, चिराना, चिलौली, चीचली, चुड़ाचाँदपुर, चुरू, चेंगलपट्टू, चेबड़ी-धगोगी, चोपड़ा, चोरबड़, चौखा, चौखुटिया, चौरास, चौरी, चौहटन, छपरा, छाजाका नागल, छापर, छोटालम्बा, जंघोरा, जगदीशपुरा, जगाधरी, जट्टारी, जनापुर, जबलपुर, जमानी, जमुड़ी, जयपुर, जरुड़, जलगाँव, जसो, जसवंतढ़, जॉजगीर, जाजली, जानडोल, जामपाली, जिहुली, जीरा, जुलगाँव (नेपाल), जैतो, जैसलमेर, जोधपुर, जोबनेर, जोस्यूड़, जौलजीवी, झहुराटभका, झाँसी, झापा, झालीवाड़ा, झुट्ठा, झुन्झूनू, झूँसी, झूलाघाट, टटेड़ा, टाँगीणीगुड़ा, टिकरीखिलड़ा, टीकमगढ़, टीलाघाम, टेघरी, टोंकखुर्द, टोडारायसिंह, ठकुरापार, ठाणे, ठारी, डकोर, डडमाल, डड़िहथ, डबरा, डबोक, डीग, डीडवाना, डोंगरिया, डोंविवली, ढाँगू, ढाना, तरोयका, तर्भा, तलवार, तिसपरी, तिमसिन, तिमिरिया तुलाह, तेल्हारा, तोक्या, तोला, तोरीबारी, थाणा, थाणे, थुलवासा, दडीबा, दत्यारसुनी, दमोह, दहमी, दातारामगढ़, दादैरा (जुरहरा), दारानगर, दिल्ली, दुमका, देवास, देशनोक, देहरागोपीपुर, देहरादून, देहली, दौसा, द्वारका, धनबाद, धरवार, धर्मपुरा, धानीखेड़ा, धामणगाँव, धाली, नन्हवाराकला, नयाबाजार, नयीदिल्ली, नरोही, नलवार, नांदन, नागल, नागपुर, नागौर, नाचनी, नाभा, नादकंडा, नानगाँव, नारायणपुर, नावन, नावली, नासिक, निम्बोली अड्डा, निगोही, नीमच, नेवरा, नेवारी, नैवेद, नीमकाथाना, नोनैती, नौगाँव, पंचकूला, नोनिया करवाह, पंडतेहड़, पंडेर, पंचपेड़ा, पटना, पटनासिटी, पट्टी, पत्योरा, पद्मपुर, परतुर, परलीबैजनाथ, परबतसर, परोक, पल्लाचौंसाली, पलेई, पाटई, पाटमऊ, पाड़रियाडाँडा, पाली, पाहल, पिंडरई, पिजड़ा, पिछोर, पिठौरागढ़, पिलखुवा, पीठीपट्टी, पीलवा, पीलीबंगा, पुखाऊ, पुणे, पुनासा, पुपरी, पुरुणावान्ध्रागोडा, पुरेना, पोखरनी, पोरबन्दर, प्रतापनगर, प्रयागराज, प्राचीन टिकैतगंज, फतेहपुर, फतेहसिंहका खेड़ा, फरीदाबाद, फागी, फूलपुररामा, बंगलौर, बंबई, बगदड़िया, बगुरैया, बघेरा, बड़गाँव, बड़ालू, बदडीहा, बदरवास, बनेड़िया, बनैल, बमोरा, बरड़ा, बरमकेला, बरवाडीह, बदरवाला, बभनान, बरेली, बरीपुरा, बरोरी, बरोहा, बसाँव, बहेरी, बाँगरोद, बाँदनवाड़ा, बाँसवाड़ा, बाँसउरकुली, बादपारी, बादीडीह, बारा, बाराकला, बलांगीर, बालूमाजरा, बाराकोट (नेपाल) बासोपट्टी, बिटोरा, बिदराली, बिलासपुर, बीकानेर, बीड़काखेड़ा, बीदार, बुरहानपुर, बुल्ढाणा, बेगूँ, बेरली खुर्द, बेरहामपुर, बेरावल, बेलड़ा, बेनियाकावास, बेलसोन्डा, बेलासद्दी, बेलोना, बैतूल, बैरसिया, बैला, बोकारो, बोरावड़, बोरीवली, बौली, ब्यौही, भटिण्डा, भट्टू (बैजनाथ), भड़ूको, भईन्दर, भरतपुर, भरसी, भलकी, भलस्वाईसापुर, भवराणा, भागलपुर, भाड़लू, भाणीसेरा, भिण्डुवा, भिलाई, भिनाय भिरावटी, भिवण्डी, भीनासर, भुवनेश्वर, भुसावल, भून्तर, भेडवन, भैंसड़ा, भैसबोड, भैसलाना, भैसहिया, भोकरदन, भोगपुर, भोजपुर, भोड़वालमजरी, भोपाल, भोपालपुरा, भौरकैम्प, भ्रमरपुर, डववाली, मठिया, मंत्रिपुख, मंडी, मऊगंज, मकेंग, मगतादीस, मझेबला, मदगढ़ी, मदाना, मनकापुर, मनसुली, मयानागुड़ी, मलँगवा (नेपाल), मलाँड, मलेनपुरवा, मलोट, मस्सूरा, महराजगंज, महरौनी, महल, महादेवा, महासमुन्द, महेन्द्रगढ़, महेशानी, महेश्वर, मांडल, माओहिंग, माचलपुर, माजिरकाडा, माडलगढ़, माधोपुर, मानेडाडा, मारीजा, मालेगाँव, मावली, मिश्रपुर, मीतली, मीरारोड, मीलवा, मुंगेर, मुजफ्फरनगर, मुजफ्फरपुर, मुरदाकिया, मुलड, मुलताई, मुलुण्ड, मुस्तफाबाद, मूडिया, मेंड़ई, मेघौना, मेहतापुर, मेड़तारोड, मेडास, मेरठ, मेवड़ा, मोगा, मोटबुंग, मोरीजा, मोलकोन, मोहबा, मौजपुर, यमुनानगर, यवतमाल, रंगिया, रजीपुरा, रठेरा, रतगगढ़, रतनपुर, रतनमहका, रन्नौद, रसूलपुर, रहली, रींगस, राँची, राऊ, राऊकेला, राजकोट, राजगढ़, राजरूपपुर, राजमहल, राजाआहर, रानीकटरा, रानीबाजार, रामगढ़, रामपुर,

रामेश्वरकम्पा, रायगढ़, रायपुर, रायपुररानी, रायपुरशिवाला, रायबरेली, रायला, रुड़की, रूबऊ, रेहलू, रैहन, रोपा, रोहतक, रोहनी, लक्ष्मणगढ़, लखनऊ, लखना, लखीमपुर खीरी, लखीबाग, लरछुट, लामिया, लालपुर, लारौन, लावन, लिलुआ, लुंगफौ, लुधियाना, लोधीपारा, लोसिंहा, लोहारा, लैमाखोंग, वंशीपुर, वगटेढी, वड़ागाँव, वल्लूपुर, वसहा, वसंत, बसाँव, बसई, वाकासर बुडकिया, वानासद्दी, वामोदा, वाराणसी, वासुदेवपुर, विजयनगर, विलखा, विलसन्डा, विशाखापट्टनम, विशाड़, विशुनपुरवा, विस्टनि, वीदर, वीरभद्र, वेदियापुर, वेरावल, वैकुंठपुर, वोरावली, व्यावर, शांतिपुर, शाजापुर, शाहतलाई, शाहपुर, शिवपुर, शिवली, शिवसा, शिवसागर, शेगाँव, श्रीगंगानगर, श्रीडूँगरगढ़, श्रीनगर, संगावली, संघर, संतोलावारी, सकरी, सपलेड, सपिया, सफीपुर, सम्फेजुंग, सरथुआ, सरदमपिंडारा, सरयाँज, सरसौंदा, सलिपुर, ससना, सहवा, सांगटी, सांगली, सागर, सागौनी, सादाबाद, सारेयाद, साहवा, साहू, सिंगहा, सिकन्दरापुर, सिकहुला, सिडको, सिरपुर कागजनगर, सिरसा, सिरेसादगाँव, सिलीगुड़ी, सीकर, सीनखेड़ा, सुन्दरवाला, सुखलिया, सुगवा, सुजानगढ़, सुजानदेसर, सुधारबाजार, सुरखी, सुरला, सुल्तानपुर, सुरहन, सूरतगढ़, सूरनगर, सूरत, सेतीखोला सेनापति, सेमरामेडौल, सेमराहाट, सेंठा, सेरो, सोनतलाई, सोरखी, हटिबेरिया, हतीसा, हथियापौर, हनुमानगढ़, हराबाग, हरिद्वार, हरियाना, हल्द्वानी, हल्दौर, हसनपालीया, हसनपुर, हाड़ौती, हातिखुआ, हातोद, हाबड़ा, हिंगोली, हिरणमगरी, हिर्री, हिसार, हिगोलाकला, हुमरस, हुबली, हुमायूँपुर, हैदराबाद, होशियारपुर।

नाम-जपकी महिमा

जपहिं नामु जन आरत भारी । मिटहिं कुसंकट होहिं सुखारी॥
नामु लेत भवसिंधु सुखाहीं । करहु बिचारु सुजन मन माहीं॥
नामु जपत प्रभु कीन्ह प्रसादू । भगत सिरोमनि भे प्रहलादू॥
ध्रुवँ सगलानि जपेउ हरि नाऊँ । पायउ अचल अनूपम ठाऊँ॥
सुमिरि पवनसुत पावन नामू । अपने बस करि राखे रामू॥
राम नाम कलि अभिमत दाता । हित परलोक लोक पितु माता॥
नहिं कलि करम न भगति बिबेकू । राम नाम अवलंबन एकू॥
कहौं कहाँ लगि नाम बड़ाई । रामु न सकहिं नाम गुन गाई॥

[गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज कहते हैं—] संकटसे घबराये हुए आर्तभक्त नाम-जप करते हैं तो उनके बड़े भारी बुरे-बुरे संकट मिट जाते हैं और वे सुखी हो जाते हैं। नाम लेते ही संसार-समुद्र सूख जाता है। हे सज्जनगण! मनमें विचार कीजिये कि राम और उनके नाममें कौन बड़ा है? नामके जपनेसे प्रभुने कृपा की, जिससे प्रह्लाद भक्तशिरोमणि हो गये। ध्रुवजीने ग्लानिसे (विमाताके वचनोंसे दुखी होकर सकामभावसे) हरिनामको जपा और उसके प्रतापसे अचल, अनुपम स्थान (ध्रुवलोक) प्राप्त किया। हनुमान्‌जीने पवित्र नामका स्मरण करके श्रीरामजीको अपने वशमें कर रखा है। कलियुगमें यह रामनाम मनोवांछित फल देनेवाला है, यह परलोकका परम हितैषी और इस लोकका माता-पिता है। कलियुगमें न कर्म है, न भक्ति है और नज्ञान ही है; रामनाम ही एक आधार है। मैं नामकी बड़ाई कहाँतक कहूँ, रामजी भी नामके गुणोंको नहीं गा सकते। [**श्रीरामचरितमानस-बालकाण्ड**]

श्रीभगवन्नाम-जपके लिये विनीत प्रार्थना

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

आज सारे संसारमें जीवनकी जटिलताएँ बढ़ती जा रही हैं। अधिकतर लोग अपनी असीमित भौतिक आवश्यकताओंकी पूर्ति करनेमें संलग्न हैं। वे अपने क्षुद्र स्वार्थकी सिद्धिके लिये दूसरोंका अहित करनेमें भी कोई संकोच नहीं करते। परस्पर ईर्ष्या, द्वेष, वैमनस्य, कलह और हिंसाके वातावरणमें अशान्त स्थिति है। देशके कुछ भागोंमें तो हिंसाका नग्न ताण्डव दिखायी दे रहा है। अधिकतर लोग मानसिक तनावके शिकार बनते जा रहे हैं। कलिका प्रकोप सर्वत्र व्याप्त है। प्रश्न यह होता है कि इस स्थितिका समाधान क्या है? ऋषि-महर्षि, मुनि और शास्त्रोंने इस स्थितिको अपनी अन्तर्दृष्टिसे देखकर बहुत पहलेसे यह घोषित कर दिया है कि 'कलिकालमें मानव-कल्याण और विश्वशान्तिके लिये श्रीहरि-नामके अतिरिक्त कोई दूसरा सुलभ साधन नहीं है।' इसीलिये यह बात जोर देकर शास्त्रोंमें कही गयी है कि 'भगवान् श्रीहरिका नाम ही एकमात्र जीवन है। कलियुगमें इसके अतिरिक्त कोई दूसरा सहारा—चारा नहीं है'—

हरेर्नामैव नामैव नामैव मम जीवनम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

(ना०पूर्व० ४१।११५)

हमारे शास्त्रोंके अतिरिक्त अनुभवी संत-महात्माओंने भी भगवन्नाम-स्मरण-जपको कलियुगका मुख्य धर्म (ऐहिक-पारलौकिक कल्याणकारी कर्तव्य) माना है। इतना ही नहीं, जगत्के समस्त धर्म-सम्प्रदाय भी किसी-न-किसी रूपमें भगवान्के नाम-स्मरण-जपके महत्त्वको प्रतिपादित करते हैं। नामके जप-स्मरणमें देश-काल-पात्रका कोई भी नियम नहीं है। श्रीचैतन्यमहाप्रभुने भी कहा है—

नाम्नामकारि बहुधा निजसर्वशक्ति-
स्तत्रार्पिता नियमितः स्मरणे न कालः।

'हे भगवन्! आपने लोगोंकी विभिन्न रुचि देखकर नित्य-सिद्ध अपने बहुत-से नाम कृपा करके प्रकट कर दिये। प्रत्येक नाममें अपनी सारी शक्ति भर दी और नाम-स्मरणमें देश-काल-पात्रका कोई नियम भी नहीं रखा।'

विपत्तिसे त्राण पानेके लिये आज श्रीभगवन्नामका स्मरण ही एकमात्र उपाय है। ऐसा कौन-सा विघ्न है, जो भगवन्नाम-स्मरणसे नहीं टल सकता और ऐसी कौन-सी वस्तु है, जो नहीं मिल सकती? इस कलिकालमें मंगलमय भगवान्के आश्रयके लिये भगवन्नामका सहारा ही एकमात्र अवलम्बन है। अतएव भारतवर्ष एवं समस्त विश्वके कल्याणके लिये, लौकिक अभ्युदय और पारलौकिक सुख-शान्तिके लिये तथा साधकोंके परम लक्ष्य एवं मानव-जीवनके परम ध्येय—भगवान्की प्राप्तिके लिये सबको भगवन्नामका स्मरण-जप-कीर्तन करना चाहिये।

अतः 'कल्याण' के भाग्यवान् ग्राहक-अनुग्राहक, पाठक-पाठिकाएँ स्वयं तथा अपने इष्ट-मित्रोंसे प्रतिवर्ष भगवन्नाम-जप करते-कराते आये हैं।

गत वर्ष पंचानबे करोड़ नाम-जपकी प्रार्थना की गयी थी। इस वर्ष विभिन्न स्थानोंसे जो सूचनाएँ प्राप्त हुई हैं; उनके अनुसार अट्ठावन करोड़, बयासी लाख, इकतीस हजार, दो सौ मन्त्रके नाम-जप हुए हैं। **पिछले वर्षकी अपेक्षा इस वर्ष श्रीभगवन्नाम-जप एवं जापकोंकी संख्यामें काफी कमी हुई है, जो विचारणीय है।** भगवन्नाम-प्रेमी महानुभावोंसे प्रार्थना है कि जपकी संख्यामें विशेष उत्साह दिखलायें, जिससे भगवन्नाम-जपकी संख्यामें और वृद्धि हो सके। आशा है, अधिक उत्साहसे नाम-जप होता रहेगा।

जपकर्ताओंकी सूचना अभीतक लगातार आ रही है, किंतु विलम्बसे सूचना आनेपर उसे प्रकाशित करना सम्भव नहीं है। अतः जपकर्ताओंको जप पूरा होने (चैत्र शुक्ल पूर्णिमा)-के अनन्तर तत्काल सूचना प्रेषित करनी चाहिये, जिससे उनके जपकी संख्या प्रकाशित की जा सके।

आप महानुभावोंसे पुनः इस वर्ष पंचानबे करोड़ भगवन्नाम-मन्त्र-जपकी प्रार्थना की जा रही है। यह नाम-जप अधिक उत्साहसे करना तथा करवाना चाहिये, जिससे भगवन्नाम-जपकी संख्यामें उत्तरोत्तर वृद्धि हो।

निवेदन है कि पूर्ववत् कार्तिक शुक्ल पूर्णिमासे जप आरम्भ किया जाय और चैत्र शुक्ल पूर्णिमा (वि० सं० २०७७)-तक पूरा किया जाय। पूरे पाँच महीनेका समय है।

भगवान्के प्रभावशाली नामका जप स्त्री-पुरुष, ब्राह्मण-शूद्र सभी कर सकते हैं। इसलिये 'कल्याण' के भगवद्विश्वासी पाठक-पाठिकाओंसे हाथ जोड़कर विनयपूर्वक प्रार्थना की जाती है कि वे कृपापूर्वक सबके परम कल्याणकी भावनासे स्वयं

अधिक-से-अधिक जप करें और प्रेमके साथ विशेष चेष्टा करके दूसरोंसे भी जप करवायें। नियमादि सदाकी भाँति ही हैं।

(१) जप प्रारम्भ करनेकी तिथि कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा (दिनांक १२।११।२०१९ ई०) मंगलवार रखी गयी है। इसके बाद किसी भी तिथिसे जप आरम्भ कर सकते हैं, परंतु उसकी पूर्ति चैत्र शुक्ल पूर्णिमा, वि० सं० २०७७ दिन-बुधवार (दिनांक ८।४।२०२०)-को कर देनी चाहिये। इसके आगे भी अधिक जप किया जाय तो और उत्तम है।

(२) सभी वर्णों, सभी जातियों और सभी आश्रमोंके नर-नारी, बालक-वृद्ध, युवा इस मन्त्रका जप कर सकते हैं।

(३) एक व्यक्तिको प्रतिदिन उपरिनिर्दिष्ट मन्त्रका कम-से-कम १०८ बार (एक माला) जप अवश्य ही करना चाहिये, अधिक तो कितना भी किया जा सकता है।

(४) संख्याकी गिनती किसी भी प्रकारकी मालासे अथवा अंगुलियोंपर या किसी अन्य प्रकारसे भी रखी जा सकती है। तुलसीजीकी माला उत्तम होगी।

(५) यह आवश्यक नहीं है कि अमुक समय आसनपर बैठकर ही जप किया जाय। प्रात:काल उठनेके समयसे लेकर चलते-फिरते, उठते-बैठते और काम करते हुए सब समय—सोनेके समयतक इस मन्त्रका जप किया जा सकता है।

(६) बीमारी या अन्य किसी कारणवश जप न हो सके और क्रम टूटने लगे तो किसी दूसरे सज्जनसे जप करवा लेना चाहिये। पर यदि ऐसा न हो सके तो बादमें अधिक जप करके उस कमीको पूरा कर लेना चाहिये।

(७) संख्या मन्त्रकी होनी चाहिये, नामकी नहीं; उदाहरणके रूपमें—

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

—सोलह नामके इस मन्त्रकी एक माला प्रतिदिन जपें तो उसके प्रति मन्त्र-जपकी संख्या १०८ होती है, जिसमें भूल-चूकके लिये ८ मन्त्र बाद कर देनेपर गिनतीके लिये एक सौ मन्त्र रह जाते हैं। अतएव जिस दिन जो भाई-बहन मन्त्र-जप आरम्भ करें, उस दिनसे चैत्र शुक्ल पूर्णिमातकके मन्त्रोंका हिसाब इसी क्रमसे जोड़कर हमें अन्तमें सूचित करें। सूचना भेजनेवाले सज्जनोंको जपकी संख्याके साथ अपना नाम-पता, मोबाइल नम्बर स्पष्ट अक्षरोंमें लिखना चाहिये।

(८) प्रथम सूचना तो मन्त्र-जप प्रारम्भ करनेपर भेजी जाय, जिसमें चैत्र पूर्णिमातक जितनी जप-संख्याका संकल्प किया हो, उसका उल्लेख रहे और दूसरी बार जप आरम्भ करनेकी तिथिसे लेकर चैत्र पूर्णिमातक हुए कुल जपकी संख्या उल्लिखित हो।

(९) प्रथम सूचना प्राप्त होनेपर जपकर्ताको सदस्यता दी जाती है। द्वितीय सूचना भेजते समय सदस्य-संख्या अवश्य लिखनी चाहिये।

(१०) जप करनेवाले सज्जनको सूचना भेजने-भिजवानेमें इस बातका संकोच नहीं करना चाहिये कि जपकी संख्या प्रकट करनेसे उसका प्रभाव नष्ट हो जायगा। स्मरण रहे, ऐसे सामूहिक अनुष्ठान परस्पर उत्साहवृद्धिमें सहायक होकर प्रभावक बनते हैं।

(११) **जापक महानुभावोंको प्रतिवर्ष श्रीभगवन्नाम-जपकी सूचना अवश्य दे देनी चाहिये।**

(१२) सूचना संस्कृत, हिन्दी, मराठी, मारवाड़ी, गुजराती, बँगला, अंग्रेजी, उर्दूमें भेजी जा सकती है।

सूचना भेजनेका पता—

नामजप-कार्यालय, द्वारा—'कल्याण' सम्पादकीय विभाग,
गीताप्रेस, पो०—गीताप्रेस—२७३००५ (गोरखपुर)

प्रार्थी—

राधेश्याम खेमका

सम्पादक—'कल्याण'

राम जपु, राम जपु, राम जपु बावरे। घोर भव-नीर-निधि नाम निज नाव रे॥
एक ही साधन सब रिद्धि-सिद्धि साधि रे। ग्रसे कलि-रोग जोग-संजम-समाधि रे॥
भलो जो है, पोच जो है, दाहिनो जो, बाम रे। राम-नाम ही सों अंत सब ही को काम रे॥
जग नभ-बाटिका रही है फलि फूलि रे। धुवाँ कैसे धौरहर देखि तू न भूलि रे॥
राम-नाम छाड़ि जो भरोसो करै और रे। तुलसी परोसो त्यागि माँगै कूर कौर रे॥ [विनय-पत्रिका]

श्रीभगवन्नाम-जपके जापक महानुभावोंको अपनी स्थायी सदस्य-संख्या एवं नाम-पता (मोबाइल नम्बरसहित) साफ-साफ अक्षरोंमें लिखना चाहिये, जिससे उनके ग्राम/नगरका शुद्ध नाम दिया जा सके। —सम्पादक

कृपानुभूति

(१)

भगवतीकी प्रत्यक्ष कृपा

बात लगभग १२-१३ साल पुरानी है। मेरे पति एक सरकारी विभागमें उच्च पदपर कार्यरत थे। एक बार हमलोग सरकारी गाड़ीसे नैनीताल टूरपर गये। रास्तेमें वहाँसे पूर्णागिरि देवीके दर्शनके लिये गये। गाड़ी एक जगह जाकर रुक गयी। वहाँसे पहाड़ी चढ़ाई चढ़ते हुए हम लोग माँके दर्शनके लिये गये। आरामसे माँके दर्शन हुए। वापसीमें मेरे पति जल्दी-जल्दी गाड़ीतक जानेके लिये आगे हो लिये। मैं गाड़ीके ड्राइवरके साथ धीरे-धीरे चलती हुई गाड़ीतक आयी, परंतु वहाँ वे दिखायी ही नहीं दिये। ड्राइवरने इधर-उधर बहुत ढूँढ़ा और एनाउन्समेण्ट भी करवाया। परंतु कुछ नहीं हुआ। इतनेमें एक और सरकारी गाड़ी आयी। उसमेंसे भी एक सरकारी दम्पती उतरे और दर्शनको जाने लगे। मैंने उनसे कहा—'हमलोग भी सरकारी गाड़ीसे आये हैं। माँका दर्शन करने गये थे। वापसीमें मेरे पति कहाँ रह गये नहीं मालूम। गरमी भयंकर है। कहीं वे चक्कर खाकर गिर तो नहीं गये। उन्होंने अमुक रंगका पैण्ट-शर्ट पहन रखा है। यदि आपको दिखें तो कहियेगा कि उनकी पत्नी उन्हें नीचे ढूँढ़ रही हैं।' उन्होंने आश्वासन दिया।

इधर मैं माँसे कह रही थी, आप तो सबकी रक्षा करनेवाली हैं। उन्हें ढूँढ़कर भेजनेकी कृपा करें। फिर भी मनमें तरह-तरहके विचार उद्वेलित कर रहे थे। ड्राइवर थका होनेके बावजूद वापस पहाड़ी चढ़कर ढूँढ़ने गया।

ड्राइवरके थोड़ी दूर जानेपर वे आते दिखायी दिये। दूसरे सरकारी अफसर भी उनको मिले तथा मेरी चिन्ता बतायी। आनेके बाद उन्होंने जो आपबीती बतायी वह आश्चर्यजनक थी।

उन्होंने कहा—अकेले आते समय वे रास्ता भूल गये और गलत रास्तेपर चले गये। थोड़ी दूर जानेपर सुनसान जंगल दिखायी देने लगा तथा गर्मीसे बेहाल हो गये। कह रहे थे कुछ समझमें नहीं आ रहा था कि किधर जायँ। इतनेमें तीन पहाड़ी औरतें सिरपर घासका गट्ठर लिये जा रही थीं, उन्होंने कहा आगे घना जंगल है, आप वापस जायँ। आगे आपको आपका रास्ता मिल जायगा। ये वापस आने लगे, लेकिन फिर मुड़कर देखा तो वे औरतें वहाँ नहीं थीं।

धन्य है माँकी कृपा! पहाड़ी औरतोंके रूपमें उन्होंने मेरे सुहागकी रक्षा की। यदि माँकी सच्चे मनसे पुकार की जाय तो वे अवश्य रक्षा करती हैं।—**विद्या लक्कड़**

(२)

माँ भगवतीकी अद्भुत कृपा

घटना लगभग चालीस वर्ष पूर्वकी है। मेरे पूज्य पिताजी स्वभावत: बहुत ही सरल प्रकृति, धर्मानुरागी एवं सन्तोषी कर्मकाण्डी ब्राह्मण थे। उनकी बतायी हुई यह सत्य घटना लगभग चालीस वर्ष पहलेकी है। यह घटना आज कलिकालमें भी भगवत्कृपापर विश्वास करनेहेतु हमें बाध्य करेगी। घटना इस प्रकार है—

राजस्थानमें झुंझुनू जिलेमें शेखावाटी क्षेत्रमें उदयपुरवाटीसे करीब २० किलोमीटर दूर मण्डावरा गाँवके पास मालकेतु पहाड़में स्थित माँ मनसा देवीका मन्दिर है।

मेरे पिताजी तथा अन्य पण्डित वहाँ नवरात्रोंमें अनुष्ठान करनेहेतु गये हुए थे। देवीके मन्दिरमें अन्दर आमने-सामने सातों पण्डित बैठे माँ भगवतीका जप कर रहे थे कि अचानक जंगलसे एक शेर सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपर देवीके मन्दिरमें मण्डपमें आया। सभी पण्डितोंने शेरको देखकर माँ भगवतीसे प्रार्थना करते हुए अपने चेहरोंपर गमछे डाल लिये कि माँ! अब तुम्हारे ही आसरे हैं। ऐसा कहते ही वह शेर माताके सामने मत्था टेका और चुपचाप सीढ़ियोंसे उतरकर जंगलकी ओर वापस चला गया। वहाँ उपस्थित सभी लोगोंने कहा कि यह तो साक्षात् माँ भगवतीका शेर था। माँ अपने भक्तोंका क्या कभी अनिष्ट कर सकती हैं?

इस घटनाके २३ वर्षों बाद पिताजीका गोलोकवास हुआ। इस घटनाकी चर्चा पिताजी हमेशा करते रहते थे कि उस दिन माँ भगवतीने हमारी कैसे रक्षा की, अन्यथा एक वन्य हिंसक प्राणीसे हमारी रक्षा कैसे होती!

—**पुरुषोत्तम शर्मा**

पढ़ो, समझो और करो

(१)

हिसाब-किताब

एक बार हमारी दुकानपर इण्डियन रुपया लेकर एक ग्राहक आया। उसे नेपाली रुपयेमें बदलने (Money Exchange)-के लिये वह हमारे साथ बट्टेमें मोल-भाव करने लगा—मैंने उसे बहुत समझाया, लेकिन वह अपनी जिदपर अड़ा था। वह भारतीय सौ रुपयेके १६४ नेपाली रुपये माँग रहा था। मैं उसे १६३ के दाम बोल रहा था। अन्तमें १६३.५० में भाव तय हुआ और उसने रुपया हमें दे दिया। पूछनेपर कि ये कितने रुपये हैं तो उसने दस हजार बताया। फिर मैंने जब उन रुपयोंको गिना तो वे १४००० थे यानी ४००० ज्यादा। मैंने उससे कहा—क्यों भाई! तुम तो अभी ५० पैसे बट्टेके लिये मुझसे इतनी बहस किये और ये जो तुमने मुझे १०००० रुपये समझकर दिये हैं, इसमें ४००० रुपये तुमने मुझे ज्यादा दिये हैं। मेरी जगह कोई और दुकानदार होता तो पैसा इधर-उधर मिला देता और दस हजारका हिसाब बनाकर १६,३५० रुपया दे देता, जबकि आपका हिसाब २२,८९० रुपयेका हो रहा है। ६५४० रुपये नेपालीका हमें लोभ नहीं है; क्योंकि मुझे विश्वास है देनेवाला तो ऊपरवाला है तो मेरी क्या औकात है कि मैं किसीको दूँ या आप किसीको दो। मेरे मुखसे एक आवाज निकली मैंने भी तो कितनोंको अधिक पैसा वापस किया है, हमारा पैसा भी तो ज्यादा चला गया होगा। आजतक कोई लौटाने नहीं आया।

अगले दिन कार्तिक पूर्णिमा नहानेवालोंकी भीड़ लग गयी। इण्डियन करेन्सीको नेपाली करेन्सीमें बदलनेवालोंकी भीड़ भी बढ़ गयी। मैं काउण्टरपर नेपाली रुपया मिलाकर सील कर रहा था। भीड़ होनेके कारण मेरी पत्नीने सारे पैसोंको काउण्टरसे उठाकर काली पॉलिथीनमें नीचे रख दिया और मैं गंगा-स्नान करने जानेवाले लोगोंका रुपया बदलने लगा। इसी बीच एक महिला आयी, उसने मेरी पत्नीसे पाँच किलो खड़ियाकी माँग की। मेरी पत्नीने खड़िया अन्दरसे लाकर उस महिलाको दे दी। उस महिलाका पति थोड़ी दूरीपर मोटरसाइकिल लिये खड़ा था। वह उसके पाससे पैसा लाने गयी तो मेरी पत्नीने खड़िया नीचे रख दिया। जब वह महिला पैसा लेकर आयी तो मेरी पत्नीने भूलवश खड़ियावाली थैलीके स्थानपर रुपयेवाली थैली उसे दे दी। कुछ समय पश्चात् वह महिला आयी और उसने कहा, 'क्यों सावजी! होशमें व्यापार करो, वरना एक दिन दुकानमें ताला लग जायगा।' मैंने कहा, 'क्या हुआ मैडम? मैं कुछ समझा नहीं!'

इसपर उसने कहा—मैंने यहाँ जो महिला थी, उनसे थोड़ी देर पहले खड़िया खरीदा, उन्होंने देखिये ये क्या दिया है! मैं तो देखकर अवाक रह गया। दुकानमें काफी भीड़ थी। मैं उस महिलाका नाम-पता न ले सका, ठीकसे शक्ल भी याद नहीं। इस घटनाको गुजरे आज २२ वर्ष हो गये। वे लोग आजतक दुबारा नहीं दिखे।

घटनाकी रात जब हम लोगोंने इस घटनापर चिन्तन किया तो याद आया कि कल एक लड़केने ४००० रुपये ज्यादा दे दिये थे, जिसके कारण मेरे मुँहसे निकला कि मैंने तो इतने लोगोंका पैसा लौटाया, पर आजतक मुझे किसीने नहीं लौटाया। परमात्माने मेरी वो पुकार सुन ली और जवाब ऐसा आया कि मैंने तुम्हें इतना लौटा दिया कि तू सारी उम्र लौटायेगा फिर भी इतना नहीं लौटा पायेगा। बहुत रुपये थे पॉलिथीनमें। और वे रुपये हमारे भी नहीं थे। मैं बाजारके कई दुकानदारोंसे लाया था। करेंसी एक्सचेंजकी वजहसे मैं कुछ दिनों पहले ही जेलसे आया था। ऐसेमें सारा पैसा गँवा चुका था, फिर भी लोगोंने हमें बिजनेस पुनः शुरू करनेके लिये रुपये दिये थे। यदि वह महिला रुपये लेकर चली गयी होती तो

मेरे लिये जीना मुश्किल हो जाता। मैं कितना भी किसीको अपनी इस घटनाको बताता, परंतु कोई विश्वास नहीं करता; क्योंकि नेपालका बार्डर होनेके कारण यह व्यापार वैध नहीं बल्कि अवैध ही होता है। इसका लाइसेंस किसीके पास नहीं है, परंतु यात्रियोंकी आवश्यकताके कारण ऐसा लेन-देन होता रहता है।

मुझे आज भी ऐसी अनुभूति होती है कि वे लोग इन्सान नहीं थे, वे ईश्वर थे; क्योंकि आजके इस भयंकर स्वार्थके युगमें भगवान्‌के अलावा ऐसा कर ही कौन सकता है! परमात्मा ही ऐसा हिसाब-किताब रख सकता है।—**मनोज कुमार**

(२)

मूक-सेवा

[१]

'सयानी लड़की हो गयी, विवाह तो करना ही है, पर ये तो पाँचसे कममें मानते ही नहीं, तुम जानती हो, मेरे पास कुछ भी नहीं है। दो सालकी मेरी बीमारीमें सब स्वाहा हो गया'—यों कहकर पन्नालाल रो पड़ा। पत्नी सीता भी रो पड़ी। लड़की सो गयी थी, उसकी ओर माँने देखा तो रुलायी और भी बढ़ गयी। करुण-रस मानो मूर्तिमान् हो गया। बाहर किवाड़की आड़में खड़ा कोई देख-सुन रहा था।

पाँचवें दिन अकस्मात् बर्दवानसे भेजी हुई एक बीमा रजिस्ट्री पन्नालालको मिली, उसमें छः हजारके सौ-सौके नोट थे। भेजनेवालेका कोई पत्र साथ नहीं था। लिफाफेपर भेजनेवालेका नाम-पता था, पर पन्नालालके पता लगानेपर वहाँ उस नामका कोई आदमी नहीं मिला। लड़कीके विवाहके लिये भगवान्‌ने ही यह सहायता भेजी है, यह समझकर पन्नालालने सानन्द लड़कीका विवाह कर दिया।

[२]

'साढ़े ग्यारह हजारकी डिग्री थी। कुर्कीका आर्डर हो चुका, कल-परसों कुर्की आयेगी। नकद पैसा एक भी पास नहीं। कुर्कीमें घरके कपड़े-लत्ते, बर्तन तथा एक छोटा-सा घर कुर्क हो जायगा। बदनामी तो होगी ही, राहके भिखारी हो जायँगे।' घरवाला बहुत परेशान है, अपनी बदनसीबी और असमर्थतापर रो रहा है! कोई सहायक नहीं!

दूसरे दिन समाचार मिलता है, कोर्टमें रुपये पूरे भरे गये। कुर्कीका हुक्म रद्द कर दिया गया।

[३]

विधवा लड़की है। तीन वर्ष पहले ब्याह हुआ था। घरमें सहायक कोई नहीं, विधवाके माता-पिता मर गये। बहुत बड़े घरानेकी माता-पिताकी एकमात्र लड़की, बड़े सुखसे पली-पुसी। विवाह भी बड़े सम्पन्न घरमें हुआ। पर दोनों ओर ही अकस्मात् भयानक घाटा लगा। सब कुछ जाता रहा। दोनों ही फर्में फेल हो गयीं। इसी चोटसे माता-पिता और पतिका देहान्त हो गया। लड़की सर्वथा असहाय, असमर्थ। कहाँ जाय, क्या करे। अकस्मात् एक दिन ढाई सौ रुपये मनीआर्डरसे आये। फिर तो कभी कहींसे, कभी कहींसे मनीआर्डरसे रुपये आने लगे, हर महीने। कभी डेढ़ सौ, कभी दो सौ, कभी ढाई सौ। भेजनेवाले के नाम-पते विभिन्न और सभी गलत। भगवान्‌ने ही यह सहायता की!

ऐसे ही चोरीसे सहायता करनेवाले पवित्र मूक सहायताके लिये सदा प्रस्तुत एक आदमी हैं और उनका यह कार्य सतत चालू है। यहाँ तो नमूनेके तौरपर ये तीन उदाहरण दिये गये हैं।—**एक जानकार**

(३)

ईमानदारीका फल

घरमें स्त्रीको टी०बी० हो रही थी। एकमात्र छोटे बच्चेको भयानक कुकुर-खाँसी। न दवाके लिये पैसे थे न पथ्यके लिये। मगनलाल बीस रुपये महीनेकी नौकरी करता था। उसके स्त्री-बच्चेके लिये दवा तथा पथ्यकी व्यवस्था हो सकती है और दोनोंके प्राण बच सकते हैं। डॉक्टर

अपनी फीस नहीं लेगा, पर दवा तथा पथ्यकी व्यवस्था तो मगनलालको ही करनी पड़ेगी।

मगनलालका बुरा हाल था। कहाँसे पैसे मिलें? उसके मालिक भी बहुत धनी नहीं थे। मामूली व्यापार करते थे। उनके दो लड़के बाहर पढ़ते थे तथा बूढ़े माँ-बाप देशमें रहते थे। दोनों जगह पचास-पचास रुपये वे प्रतिमास भेजा करते थे। उन्होंने दो मनीआर्डर पचास-पचास रुपयेके लिखकर मगनलालको सौ रुपये समेत दिये और डाकमें लगानेको भेजा।

मगनलालको स्त्री-बच्चेकी जान बचानेके लिये सौ रुपयेकी ही जरूरत थी और ये सौ रुपये ही थे। स्त्री-बच्चेकी करुण दशा, उनकी रोनी सूरत और रुपयोंकी व्यवस्था होनेपर उनकी जान बचनेकी पूरी आशा। मगनलालका मन विचलित होने लगा। बार-बार संघर्ष हुआ, पर आखिर स्त्री-बच्चेके मोहने विजय पायी। मगनलाल मनीआर्डर न लगाकर शामको रुपये घर ले गया। पर उसका मन बड़ा खिन्न था। चेहरा अत्यन्त उदास। वह पश्चात्तापकी आगसे जल रहा था। घर जाकर उसने पत्नीसे कहा बड़ी हिम्मत बटोरकर कि वह सौ रुपये लाया है—दवा-पथ्यादिके लिये। पत्नीने उसके चेहरेको उदास तथा आँखोंमें छलकते आँसुओंको देखा। पूछा, 'कहाँसे कैसे लाये हैं?' उसने सारी बातें बता दीं। पत्नीने कहा—'आपने मोहमें पड़कर यह क्या किया? मान लीजिये मेरे तथा बच्चेके प्राण नहीं बचेंगे; पर कौन कह सकता है कि अगले जन्ममें हमलोगोंका फिर मिलाप नहीं होगा, पर खोया हुआ ईमान, गँवायी हुई सचाई कहाँसे वापस मिलेगी? आप भगवान्‌पर भरोसा कीजिये और कल ही दोनों मनीआर्डर लगा दीजिये तथा हिम्मत करके अपना यह अपराध मालिकको बता दीजिये। हो सकता है वे आपकी एक बार नीयत बिगड़ी जानकर आपको निकाल दें, पर भगवान् आपके योगक्षेमको निबाहेंगे। आप भगवान्‌पर पूरा भरोसा कीजिये।'

मगनलालका मन तो दुविधामें था ही। दो प्रकारके पापी होते हैं। एक तो वे—जिनको परिस्थितिके परवश होकर मानसिक कमजोरीके कारण पाप करने पड़ते हैं, पर वे पाप उनके हृदयमें शूलकी तरह चुभते रहते हैं। दूसरे वे, जो पाप करके अपनेको बुद्धिमान् मानते तथा गौरवका अनुभव करते हैं। ऐसे पापियोंका उद्धार बड़ा ही कठिन होता है। पर मगनलालका यह पाप परिस्थिति-परवश हुआ था, उसके मनमें पश्चात्ताप था। उसको पत्नीकी पवित्र प्रेरणासे अपनी भूल स्पष्ट हो गयी। दूसरे ही दिन उसने मनीआर्डर लगा दिये और मनीआर्डर लगाकर कल वापस न लौटनेकी, मोहवश रुपये रख लेनेकी, अपने मनकी बिगड़ी हालतकी तथा पत्नीके साथ हुई बातचीतकी सारी कथा रोते-रोते मालिकको सुना दी और कहा कि 'मुझसे यह अक्षम्य अपराध हो गया है, आप मुझे निकाल दीजिये।'

मालिक बड़े नेक तथा सुहृदय थे। वे मगनलालकी स्त्रीकी बीमारीका हाल कुछ सुन चुके थे। मगनलालने तो कभी विशेष बताया नहीं था। इसलिये वे समझते थे—अच्छी हो गयी होगी। आज सब बातें सुनकर उनके नेत्रोंमें आँसू आ गये और सहानुभूति जाग उठी। उन्होंने मगनलालका वेतन बीससे पैंतालीस कर दिया। ऐसे ईमानदार आदमी मासिक पैंतालीसपर मिल जायँ तो बड़े सस्ते मिले। सौ रुपये नगद उसी समय दे दिये और कह दिया कि 'पत्नी तथा बच्चेके लिये दवा-पथ्यमें जो खर्च लगे, सब दूकानसे ले लिया करो।'

मगनलाल और उसकी पत्नीकी ईमानदारीका फल उन्हें हाथों-हाथ मिला। पत्नी और बच्चा दोनों अच्छे हो गये। आगे चलकर तो मालिकने मगनलालको अपनी दूकानमें बराबरका हिस्सेदार ही बना लिया।

—रामजीवन चौधरी

मनन करने योग्य

शक्तिशाली शत्रुके सामने नम्र होना बुद्धिमानी

एक बार महाराज युधिष्ठिरने भीष्म पितामहसे पूछा—भरतश्रेष्ठ! राजा एक दुर्लभ राज्यको पाकर भी यदि सेना-खजाना आदि साधनोंसे रहित हो तो वह अपनेसे बलमें सर्वथा बढ़े-चढ़े हुए शत्रुके सामने कैसे टिक सकता है?

इसपर भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर! इस विषयमें समुद्र और नदियोंके संवादरूप प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया जाता है। एक समयकी बात है, सरिताओंके

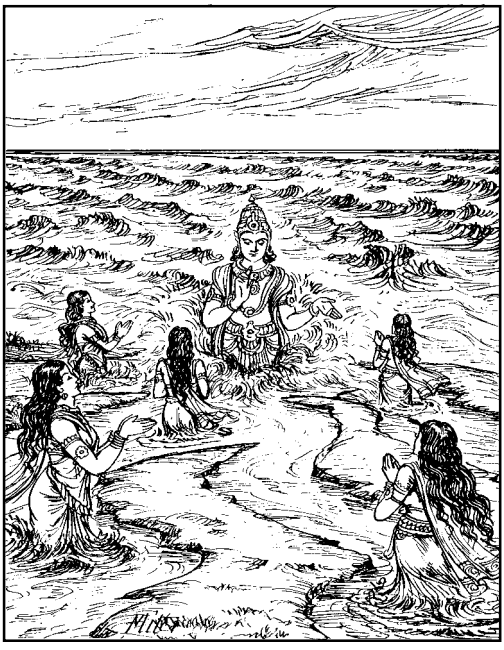

स्वामी समुद्रने सरिताओंसे अपने मनका एक सन्देह इस प्रकार पूछा—'नदियो! मैं देखता हूँ, जब तुमलोगोंमें बाढ़ आती है तो बड़े-बड़े वृक्षोंको जड़-मूल और डालियोंसहित उखाड़कर तुम अपने प्रवाहमें बहा लाती हो, किंतु उनमें बेंतका कोई पेड़ नहीं दिखायी देता। बेंतका शरीर तो नहींके बराबर—बहुत पतला होता है, उसमें कुछ दम भी नहीं होता और वह तुम्हारे खास किनारेपर जमता है; फिर भी तुम उसे न ला सकीं! क्या कारण है? उसे कमजोर समझकर उपेक्षा तो नहीं कर देतीं? अथवा उसने तुमलोगोंका कुछ उपकार तो नहीं किया है? क्यों बेंतका वृक्ष तुम्हारा तट छोड़कर नहीं आता? इस विषयमें मैं तुम सब लोगोंका विचार जानना चाहता हूँ।'

यह सुनकर गंगाजीने युक्तियुक्त, अर्थपूर्ण तथा दिलमें बैठनेवाली बात कही—'नाथ! वे वृक्ष अपने स्थानपर अकड़कर खड़े रहते हैं, हमारे प्रबल प्रवाहके सामने सिर नहीं झुकाते, इस प्रतिकूल बर्तावके कारण ही उन्हें अपना स्थान छोड़ना पड़ता है। किंतु बेंत ऐसा नहीं है। वह नदीके वेगको आते देखकर झुक जाता है, वह समयके अनुसार बर्ताव करना जानता है, सदा हमारे अधीन रहता है, अकड़कर खड़ा नहीं होता; अतः अपने अनुकूल आचरणके कारण उसको स्थान छोड़कर यहाँ नहीं आना पड़ता। जो पौधे, वृक्ष या लता-गुल्म आदि हवा और पानीके वेगसे झुक जाते तथा वेग शान्त होनेपर सिर उठाते हैं, उनका कभी तिरस्कार नहीं होता।'

भीष्मजी कहते हैं—युधिष्ठिर! इसी प्रकार जो राजा बलमें बढ़े-चढ़े तथा विनाश करनेमें समर्थ शत्रुके पहले वेगको सिर झुकाकर नहीं सह लेता, वह शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। जो बुद्धिमान् अपने तथा शत्रुके सार, असार, बल और पराक्रमको जानकर उसके अनुसार बर्ताव करता है, उसकी कभी पराजय नहीं होती।* अतः जब शत्रुको बलमें अपनेसे बहुत बढ़ा हुआ समझे तो विद्वान् पुरुषको बेंतकी तरह नम्र हो जाना चाहिये। यही बुद्धिमानीका लक्षण है। नीतिकी यह बात मात्र राजाओंके लिये ही नहीं, सामान्य मनुष्यके लिये भी उतनी ही सत्य है। **[महाभारत]**

---

* सारासारं बलं वीर्यमात्मनो द्विषतश्च यः। जानन् विचरति प्राज्ञो न स याति पराभवम्॥ (महा०शान्ति० ११३। १३)

प्र० ति० 20-09-2019
रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० 2308/57 पंजीकृत संख्या—NP/GR–13/2017–2019
LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT | LICENCE No. WPP/GR–03/2017–2019

नवीन प्रकाशन—छपकर तैयार

सरल श्रीदुर्गासप्तशती क्यों?—हमारे समाजमें ऐसे बहुत-से पाठक हैं जो संस्कृतका ज्ञान न होनेके कारण श्रीदुर्गासप्तशतीके श्लोकोंका शुद्ध पाठ नहीं कर पाते हैं। हमारी भावना और प्रयास उन सभी महानुभावोंके लिये है जो सप्तशती पढ़ना सीखना चाहते हैं। इसी सद्भावनासे प्रेरित होकर भगवान्की अहैतुकी कृपासे यह **'सरल श्रीदुर्गासप्तशती'** तैयार की गयी है।

सप्तशतीका सही उच्चारण सीखनेवाले सामान्य पाठकोंकी सुविधाके लिये प्रत्येक चरणके कठिन शब्दोंको सामासिक चिह्नोंसे अलग करके दो रंगोंमें छापा गया है। इससे श्लोकके प्रत्येक चरणको समझनेमें सहायता मिलेगी।

४४ *सरल श्रीदुर्गासप्तशती*

स्वारोचिषेऽन्तरे पूर्वं, चैत्र-वंश-समुद्भवः।
सुरथो नाम राजाभूत्, समस्ते क्षिति-मण्डले॥ ४ ॥
तस्य पालयतः सम्यक्, प्रजाः पुत्रानि-वौरसान्।
बभूवुः शत्रवो भूपाः, कोला-विध्वंसिनस्-तदा॥ ५ ॥
तस्य ...
न्यूनैरा... ६ ॥
ततः स्वपुर-मायातो, निजदेशा-धिपोऽभवत्।
आक्रान्तः स महाभागस्,-तैस्तदा प्रबलारिभिः॥ ७ ॥
अमात्यैर्-बलिभिर्-दुष्टैर्,-दुर्बलस्य दुरात्मभिः।
कोशो बलं चापहृतं, तत्रापि स्वपुरे ततः॥ ८ ॥

सरल श्रीदुर्गासप्तशती
(मूल पाठविधिसहित)-के एक पृष्ठके टाइपका
नमूना (कोड 2236) मूल्य ₹ ३५

गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित सूर-साहित्य

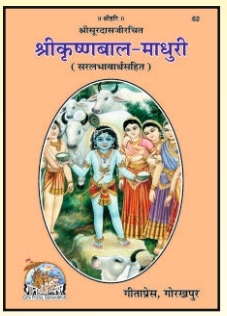

कोड 62 मूल्य ₹ ३५

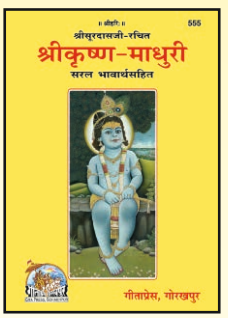

कोड 555 मूल्य ₹ ४०

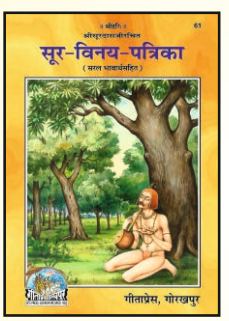

कोड 61 मूल्य ₹ ४०

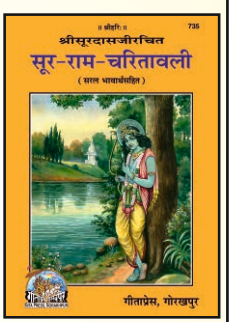

कोड 735 मूल्य ₹ ३५

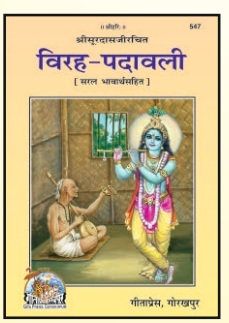

कोड 547 मूल्य ₹ ३०

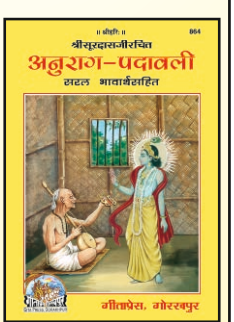

कोड 864 मूल्य ₹ ४०

छः पुस्तकोंका पूरा सेटका मूल्य ₹ २२० एवं रजिस्टर्ड डाकखर्च ₹ ४० अतिरिक्त

e-mail : booksales@gitapress.org—थोक पुस्तकोंसे सम्बन्धित सन्देश भेजें।
Gita Press web : gitapress.org—सूची-पत्र एवं पुस्तकोंका विवरण पढ़ें।
gitapressbookshop.in से गीताप्रेसकी खुदरा पुस्तकें Online कूरियरसे/डाकसे मँगवायें।

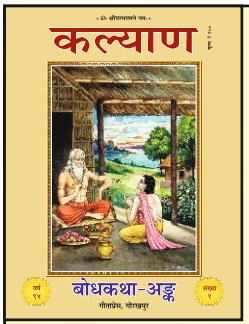

जनवरी सन् २०२० ई०-कल्याण वर्ष ९४-का विशेषाङ्क

'बोधकथा-अङ्क'

आत्मकल्याणके संसाधनोंमें बोधकथाओंके परिशीलनका अन्यतम स्थान है। बोधकथाएँ एक सच्चे हितैषी मित्रकी भाँति 'ऐसा करना चाहिये-ऐसा नहीं करना चाहिये'—यह बताकर हमें कर्तव्याकर्तव्यका सहज ही ज्ञान करा देती हैं। बोधका तात्पर्य है, भलीभाँति जानना और समझना। ऐसे प्रेरक-प्रसंग जो हमें अच्छे काममें, भलाईके काममें लगा सकें, मानवताके कल्याणमें लगा सकें, आत्मकल्याणमें प्रवृत्त कर सकें और प्रभुके समीप ले जायँ, बोधकथाके अन्तर्गत समाहित हैं। ऐसी बोधकथाएँ हमें मानवताका पाठ पढ़ाती हैं, सच्चा मानव बननेमें सहयोग प्रदान करती हैं, मानवीय संवेदनाको जगाती हैं, प्रेमका सन्देश देती हैं, भाईचारेकी सीख देती हैं। वर्तमानमें ऐसी बोधकथाओंके तात्पर्यको अपने जीवनमें आचरित करनेसे समाजमें प्रेम और अहिंसाका परिवेश बन सकता है। परस्पर राष्ट्रोंमें एक-दूसरेके प्रति मैत्रीभाव स्थापित हो सकता है। इस दृष्टिसे इन बोधकथाओंका बड़ा ही महत्त्व है। इस विशेषाङ्कमें ऐसी ही बोधकथाओं, प्रेरक प्रसंगों एवं वृत्तान्तोंका समावेश और संयोजन किया जा रहा है, जिससे सभी पाठक महानुभाव उनसे लाभ उठा सकें, प्रेरणा प्राप्त कर सकें।

वार्षिक-शुल्क—₹२५० । पंचवर्षीय शुल्क—₹१२५०

Online सदस्यता हेतु gitapress.org पर Kalyan या Kalyan Subscription option पर click करें।

नवीन प्रकाशन—दिनाङ्क १-०४-२०१९ से ३०-०९-२०१९ तक

कोड	पुस्तक-नाम	मूल्य ₹
2223	श्रीशिवमहापुराण-सटीक भाग-१	३००
2224	श्रीशिवमहापुराण-सटीक भाग-२	३००
2189	शिवपुराण-कथासार	२०
2183	उपनयन-संस्कार-पद्धति (बेड़िया)	१५
2191	विवाह-संस्कार-पद्धति (बेड़िया)	२०
2197	साधन-सुधा-निधि	१८०
2210	श्रीपञ्चरत्नगीता-पॉकेट वि०सं०	२५
2226	देवीभागवत-कथासार	२०
2228	पंचांग-पूजन-पद्धति	२०
2234	सुन्दरकाण्ड (मूल) बृहदाकार टाइपमें (रंगीन)	६०
	बँगला	
2198	भक्त ओ भगवान	१५
2190	सरल गीता (दो रंगमें)	३०
2195	श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण भाग-२	२५०
	तेलुगु	
2209	श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण मूलम्	२८०
2230	श्रीललितासहस्रनामस्तोत्रम् (भावार्थमुलु)	३०
	गुजराती	
2194	गीता-प्रबोधनी	६०
2208	वर्णमाला	२५
2217	श्रीसत्यनारायणव्रत कथा	१५
2218	श्रीनरसिंहपुराण	१००
2227	श्रीलिंगमहापुराण	२४०
	ENGLISH	
2204	Dishonour of Matrishakti	6
2205	Devotee Children	10
2206	Devotee Women	12
2207	Five Devotee Gems	15
	तमिल	
2196	श्रीविष्णुपुराण	१५०
2192	श्रीमद्भागवतमहापुराण वचनमु I	२३०
2193	श्रीमद्भागवतमहापुराण वचनमु II	२३०
	कन्नड़	
2219	समर्थ रामदास विरचित मनोबोध	१२
2220	स्तोत्ररत्नावली	३०
2221	श्रीमन्नारायणीयम् तात्पर्यसहित	६०
	नेपाली	
2202	श्रीरामगीता	५
2201	पाण्डवगीता एवं हंसगीता	५
2199	बाल-शिक्षा	८
2200	विवेक-चूडामणि	२०
2203	बालकोंकी बातें	१५
2211	मातृशक्तिका घोर अपमान	६
2212	प्रेम-दर्शन	२०
2213	दाम्पत्यजीवनका आदर्श	१५
2214	अपात्रको भगवत्प्राप्ति	२५
2215	आदर्श भक्त	१५
2216	प्रेरणाप्रद-कहानियाँ	२५
2222	श्रीविष्णुसहस्रनामस्तोत्रम्	७
2232	नित्य-स्तुति और प्रार्थना	५
2233	सच्चा गुरु कौन?	५
2231	एक संतकी वसीयत	४
2229	श्रीदुर्गासप्तशती (नेपाली अनुवादसहित)	३५

गीता-दैनन्दिनी सन् २०२० के सभी संस्करण उपलब्ध—मँगानेमें शीघ्रता करें।

विवरण कल्याण सितम्बरके कवर पृष्ठ चारपर देखें।